विशेषांक

ISSN 2321 - 5704

भाषा भारती

राजभाषा उन्नयन की वार्षिक पत्रिका

अंक 10, वर्ष 11, सितम्बर 2024

भाषा भारती • अंक 10, वर्ष 11, सितम्बर 2024

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 पर केन्द्रित

राजभाषा प्रकोष्ठ
डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय
सागर (मध्य प्रदेश)
(केन्द्रीय विश्वविद्यालय)
(शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार के अधीन)

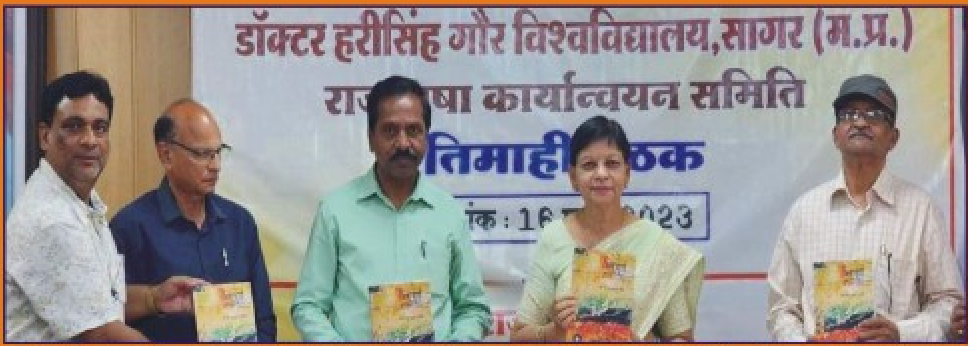

विश्वविद्यालय की गृह राजभाषा पत्रिका 'भाषा भारती' के नौवें अंक का माननीया कुलपति महोदया प्रो. नीलिमा गुप्ता द्वारा विमोचन।

विश्वविद्यालय में राष्ट्रीय मूल्यांकन और प्रत्यायन परिषद (NAAC) की पाँच सदस्यीय टीम को राजभाषा के प्रगामी प्रयोग की जानकारी देते हुए हिन्दी अधिकारी श्री संतोष सोहगौरा।

हिन्दी पखवाड़ा–2023 के दौरान कर्मचारियों हेतु हिन्दी टंकण प्रतियोगिता का आयोजन।

हिन्दी पखवाड़ा–2023 के पुरस्कार वितरण एवं समापन समारोह में विद्यालयी छात्रा को पुरस्कार प्रदान करती हुई माननीया कुलपति महोदया।

भाषा भारती

राजभाषा उन्नयन की वार्षिक पत्रिका

ISSN 2321 - 5704

(अंक : 10, वर्ष : 11, सितम्बर 2024)

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 विशेषांक

संरक्षक

प्रो. नीलिमा गुप्ता, कुलगुरु

परामर्शदाता

डॉ. सत्यप्रकाश उपाध्याय, प्रभारी कुलसचिव

सम्पादक मण्डल

प्रो. आनन्दप्रकाश त्रिपाठी

डॉ. आफरीन खान

डॉ. शशिकुमार सिंह

डॉ. नीरज उपाध्याय

डॉ. पंकज सिंह

सम्पादक

संतोष सोहगौरा

सहायक सम्पादक

अभिषेक सक्सेना

राजभाषा प्रकोष्ठ

डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय

सागर (मध्य प्रदेश) – 470003

दूरभाष : (07582) 297118

E-mail : hindicell2015@gmail.com

rajbhasha@dhsgsu.edu.in

भाषा भारती

राजभाषा उन्नयन की वार्षिक पत्रिका
ISSN 2321 - 5704
अंक : 10, वर्ष : 11
सितम्बर 2024

© **सर्वाधिकार सुरक्षित**

सम्पादकीय पत्र व्यवहार
हिन्दी अधिकारी
राजभाषा प्रकोष्ठ
डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय
सागर (म.प्र.)–470003

कार्यालय दूरभाष : (07582) 297118
ई–मेल : hindicell2015@gmail.com
rajbhasha@dhsgsu.edu.in

मूल्य
नि:शुल्क आन्तरिक वितरण हेतु

छायाचित्र : श्री गोविन्द सरवैया, सागर के सौजन्य से

'भाषा भारती' में प्रकाशित रचनाकारों के विचार से सम्पादक मण्डल का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

मुद्रण
द बालाजी ऑफसेट
राजकोट, गुजरात

समर्पण

विश्वविद्यालय के संस्थापक
सर डॉक्टर हरीसिंह गौर की स्मृति को सादर नमन

''इस विद्या–मन्दिर में चुप–चुप बैठ कभी जाता हूँ,
बीते युग की स्वप्न–सलोनी रस–वाणी पाता हूँ ।
अखिल विश्व के नए–पुराने महामनीषी आते,
दुर्बलताओं से ऊपर उठ नव–नव स्वर में गाते ।
लिखा मुक्ति के, अहं–तृप्ति के, यश के लिए जिन्होंने,
आज सतत् ऊर्ध्वमुख खोजते सत्य–स्वर्ग के कोने ।''

– सर डॉक्टर हरीसिंह गौर की कविता 'इन अ लाईब्रेरी' से।

प्रो. नीलिमा गुप्ता
कुलगुरु
डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय
सागर (म. प्र.)

संदेश

मुझे यह जानकर हर्ष है कि विश्वविद्यालय सरकारी कामकाज में हिन्दी के प्रयोग को बढ़ावा देने के साथ–साथ राजभाषा नीति का यथोचित अनुपालन कर रहा है। विश्वविद्यालय के राजभाषा प्रकोष्ठ द्वारा गृह राजभाषा पत्रिका '**भाषा भारती**' का प्रकाशन इस दिशा में एक सराहनीय प्रयास है।

भाषा हम सब की अस्मिता से जुड़ी है। आज हिन्दी किसी क्षेत्र विशेष की भाषा नहीं है। वह भारत के सभी भाषा–भाषियों के सम्मिलित योगदान से बनी है। उसकी कोई विशिष्ट या अलग शब्दावली नहीं है। इसलिए वह पूरे भारत में बोली और समझी जाती है। यही हिन्दी की पहचान और भूमिका है। यही कारण है कि हाल के युग में हिन्दी का विकास राष्ट्रीय चेतना के विकास के साथ हुआ है।

आज के तेजी से बदलते हुए सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक परिवेश में वैश्वीकरण का प्रभाव हमारे घरों तक आ पहुँचा है, ऐसे में भाषा को सुरक्षित रखने का, उसकी शुद्धता सुनिश्चित करने का मुद्दा हम सबके लिए ज़रूरी हो गया है। इस परिप्रेक्ष्य में हिन्दी भाषा को जीवित रखने के लिए यह आवश्यक है कि भाषा के स्वरूप को सरल रखा जाए जिससे कि यह व्यावहारिक हो और लोगों को उसका उपयोग करने में सुगमता रहे।

पत्रिका के प्रकाशन का यह ग्यारहवाँ वर्ष है। मेरा यह मानना है कि ऐसी पत्रिकाएँ जहाँ एक ओर हिन्दी के प्रचार–प्रसार एवं उसके प्रगामी प्रयोग को बढ़ावा देने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं, वहीं दूसरी ओर विश्वविद्यालय के कर्मचारियों को इनके जरिए अपने विचार भी प्रकट करने का सुअवसर प्राप्त होता है।

मैं पत्रिका के सफल प्रकाशन की शुभकामनाओं सहित पत्रिका के संपादक मंडल एवं इससे जुड़े सभी लोगों को बधाई देती हूँ।

नीलिमा गुप्ता

हिन्दी दिवस
14 सितम्बर, 2024

(प्रो. नीलिमा गुप्ता)

।। उपसंहार ।।

मुझे सुना दे आशा का मृदु गीत
झंकृत जिसमें हो आस्था–आनन्द,
गीत निराशा का रहने दे, मीत
जिससे दुख के अन्ध कक्ष में बन्द
प्राण हमारे पाएं अपना प्रीत,
जान सकें हम अपनी शक्ति अमंद ।
मुझे सुना दे दिव्य प्रेम का गीत,
कि जो गला दे मन का अनहित रे
जो अंबर की आत्माओं का मीत,
जो मानव को करे न मूलच्छत रे ।
मुझे सुना दे कोई ऐसा गीत
पा जाए तू यदि मन–वांछित रे ।

– सर डॉक्टर हरीसिंह गौर के काव्य संग्रह 'स्टेपिंग वेस्टवर्ड एण्ड अदर पोइम्स' में संकलित कविता 'द एपिलॉग' का हिन्दी रूपान्तर।

संतोष सोहगौरा
संयुक्त कुलसचिव एवं हिन्दी अधिकारी (प्र.)
डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय
सागर (म. प्र.)

संपादकीय

'शैक्षिक प्रणाली का उद्देश्य अच्छे इंसानों का विकास करना है- जो तर्कसंगत विचार और कार्य करने में सक्षम हो, जिसमें करुणा और सहानुभूति, साहस और लचीलापन, वैज्ञानिक चिंतन और रचनात्मक कल्पना शक्ति, नैतिक मूल्य और आधार हों। इसका उद्देश्य ऐसे उत्पादक लोगों को तैयार करना है जोकि अपने संविधान द्वारा परिकल्पित- समावेशी, और बहुलतावादी समाज के निर्माण में बेहतर तरीके से योगदान करें।'

– राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 के आधार सिद्धांत से

1

भारत की आजादी के बाद से शिक्षा के क्षेत्र में अनवरत नीतिगत बदलाव हुए हैं। परन्तु इन सब बदलावों में अगर कोई बहुत बड़े बदलाव हुये हैं तो उसमें मील का पत्थर राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 भी है। 29 जुलाई, 2020 को भारत सरकार ने इसे अनुमोदित किया। यह हमारे देश की तीसरी महत्वपूर्ण शिक्षा नीति है। स्वतंत्रता के बाद 1968 में पहली, उसके बाद 1986 में दूसरी और अब 34 साल बाद 2020 में देश के प्रधानमंत्री माननीय नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में देश की इस शिक्षा नीति को कैबिनेट द्वारा अनुमोदित किया गया। अब इस राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 के कार्यान्वियन का दौर है। 'भाषा भारती' का यह विशेष अंक भी राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 के सफल कार्यान्वियन पर केन्द्रित है।

यह बात हम सभी जानते और मानते हैं कि भारत शीघ्र ही विश्व की तीसरी आर्थिक महाशक्ति बनने की ओर अग्रसर है। प्रगति की इस राह पर जब हम आगे बढ़ने की बात करते हैं तो हम प्रौद्योगिकी व औद्योगिक क्षेत्र की समन्वित उन्नति की भी बात करते हैं, परन्तु यदि उसमें शिक्षा का समावेश न हुआ तो क्या यह संभव है? प्रगतिवाद में यदि शिक्षा का समावेश न हुआ तो फिर बात अधूरी रह जाती है। हमें आर्थिक शक्ति के साथ–साथ 'नॉलेज सुपर पावर' भी बनना होगा। इस संदर्भ में जब हम वैश्विक परिदृश्य को देखते हैं, तो पाते हैं कि 'नॉलेज सुपर पॉवर' बनने के लिए शिक्षा का तकनीकी आधारित होना अति–आवश्यक है। इस दिशा में

यह शिक्षा नीति मील का पत्थर साबित होगी। राष्ट्रीय शिक्षा नीति कुल मिलाकर दो भागों में बटी हुई है: एक भाग जो केन्द्रित है 'स्कूली शिक्षा' पर; और दूसरा भाग 'उच्चतर शिक्षा' पर केन्द्रित है। इस नीति के यह दो बहुत ही महत्वपूर्ण अवयव है। जब स्कूली शिक्षा की बात करते हैं तो हम देखते हैं कि यह वर्तमान में प्रचलित 10+2 शिक्षा पद्धति के स्थान पर 5+3+3+4 की अवधारणा पर आधारित होगी। हम सभी जानते हैं कि अभी जो बोर्ड परीक्षायें होती हैं वे 10वीं और 12वीं की होती हैं। परन्तु अब इस नयी व्यवस्था में तीसरी, पांचवी और आठवीं कक्षा में ये परीक्षायें होंगी। इतना ही नहीं बच्चों को वर्ष में दो बार परीक्षा देने का अवसर प्राप्त होगा, पाठ्यक्रम रुचि, बौद्धिक कौशल और बौद्धिक क्षमता के आधार पर होगा। इसमें जो सबसे नायाब व्यवस्था है वह यह कि बच्चा अपना खुद मूल्यांकन कर सकता है। इसके साथ जो बच्चा उसका क्लासमेट है वो भी उसका मूल्यांकन कर सकता है और शिक्षक तो करेंगे ही। इस तरह मूल्यांकन नीरस न होकर रोचक होगा।

2

इस व्यापक राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 में ऐसे ही अनेक अभिनव प्रावधान किए गए हैं। इन्हीं में से एक है– मातृभाषा में शिक्षण। इस शिक्षा नीति में मातृभाषा में शिक्षण की व्यवस्था एक महत्वपूर्ण कदम है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 में मातृभाषा में शिक्षण तथा भारतीय भाषाओं के विकास को पर्याप्त बल दिया गया है। शिक्षा नीति के सफल कार्यान्वियन के लिए तथा भारतीय भाषाओं को प्रासंगिक और जीवंत बनाए रखने के लिए भारतीय भाषाओं में उच्च गुणवत्तापूर्ण अधिगम एवं प्रिंट सामग्री का सतत् प्रवाह बनाए रखना अति–आवश्यक है।

भारत की प्रत्येक बोली और भाषा के साहित्य व संस्कृति को संजोकर रखना, उसे आगे बढ़ाना, उसमें पठन–पाठन की व्यवस्था करना हमारा कर्त्तव्य है, क्योंकि भाषाएं हमें अपनी संस्कृति से जोड़ती हैं। हमारी भाषाएं, भारत की एकता–अखंडता को अक्षुण्ण रखने का एक सशक्त माध्यम हैं। उच्चतर शिक्षण संस्थानों में भारतीय भाषाओं को बढ़ावा देने के लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली ने एक संचालन–समिति का भी गठन किया है जिसमें हमारे विश्वविद्यालय की माननीया कुलगुरु प्रो. नीलिमा गुप्ता इस समिति की सम्मानित सदस्य हैं।

जैसा कि ज्ञात है भारतीय भाषाओं में शिक्षण हेतु पाठ्यसामग्री एवं उत्कृष्ट पाठ्यपुस्तकों की उपलब्धता सुनिश्चित करना नितांत आवश्यक है। देश के अग्रणी केन्द्रीय विश्वविद्यालय होने के कारण वर्तमान में डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय में भारत के लगभग सभी राज्यों के विद्यार्थी अध्ययनरत हैं। उनके सर्वांगीण विकास के लिए अनुकूल अकादमिक वातावरण

उपलब्ध कराना हमारा कर्तव्य है। विद्यार्थियों की मातृभाषा में पाठ्यसामग्री/पाठ्यसामग्री उपलब्ध हो, उन्हें अपनी भाषा–संस्कृति संस्कृति को संरक्षित संवर्धित करने का अवसर मिले साथ ही 'एक भारत, श्रेष्ठ भारत' के मंत्र पर कार्य करते हुए अन्य भारतीय भाषाओं को सीखने तथा संस्कृतियों से परिचित होने के अवसर उपलब्ध हों, इसके लिए सामूहिक प्रयत्न किए जाने की आवश्यकता है। इसी कड़ी में हमारे विश्वविद्यालय में 'भारतीय भाषा प्रकोष्ठ' का गठन भी इस दिशा में एक अभिनव प्रयास है।

माननीया कुलगुरु महोदया के सतत् मार्गदर्शन में विश्वविद्यालय में विभिन्न भारतीय भाषाओं में अब तक 12 पुस्तकें प्रकाशित की जा चुकी हैं जिनका विमोचन पिछले वर्ष माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी के कर–कमलों से 'राष्ट्रीय शिक्षा समागम' में किया गया। वर्तमान में 13 भारतीय भाषाओं में विद्यार्थियों के पठन–पाठन के लिए पुस्तक लेखन का कार्य प्रगति पर है।

हमारे विश्वविद्यालय में राष्ट्रीय शिक्षा नीति की भावनाओं के अनुरूप पाठ्यक्रमों का निर्माण, शिक्षण–अधिगम में नवाचार, एकेडमिक क्रेडिट बैंक, नेशनल एकेडमिक डिपॉजीटरी, केन्द्रीकृत प्रवेश तथा मूल्यांकन के तौर–तरीकों में आमूलचूल परिवर्तन किए गए हैं। विश्वविद्यालय में प्रवेश अब राष्ट्रीय परीक्षण एजेंसी द्वारा आयोजित एकीकृत प्रवेश परीक्षा के माध्यम से प्रदान किए जा रहे हैं। पाठ्यपुस्तकों पर निर्भरता कम करने के उद्देश्य से विश्व–विद्यालय के शैक्षणिक बहुमाध्यम अनुसंधान केन्द्र द्वारा ई–लर्निंग के माध्यम से मूक पाठ्यक्रम संचालित किए जा रहे हैं साथ ही विश्वविद्यालय के जवाहरलाल नेहरू पुस्तकालय में विभिन्न अध्ययन क्षेत्रों की पाठ्य सामग्री ई–कंटेंट के रूप में उपलब्ध करायी जा रही है। इससे हमारे शिक्षकगण, शोधार्थी एवं विद्यार्थीगण भी लाभान्वित हो रहे हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 के अनुपालन में विश्वविद्यालय के कम्युनिटी कॉलेज, दूरस्थ शिक्षा संस्थान तथा अन्य विभागों द्वारा नवीनतम प्रमाण–पत्र, डिप्लोमा एवं डिग्री पाठ्यक्रम संचालित किए जा रहे हैं, जिसमें कौशल विकास, बहु–विषयक शिक्षा और रचनात्मक तथा आलोचनात्मक सोच को बढ़ावा देने पर ध्यान केन्द्रित किया गया है। हम विश्वविद्यालय के अकादमिक वातावरण को अधिक समावेशी, लचीला और शिक्षार्थी–केन्द्रित बनाने की दिशा में निरंतर प्रयत्नशील हैं।

3

'भाषा भारती' के पिछले अंकों को आप सभी का जो प्यार और दुलार मिला वह हमारे

लिए गौरव का विषय रहा है। आशा करता हूं कि यह अंक भी आप जैसे सुधी पाठकों की कसौटी पर खरा उतरेगा। पहले की ही भांति यह अंक भी हमारे सम्माननीय शिक्षकों, अधिकारियों एवं कर्मचारियों में राजभाषा हिन्दी के प्रति लगाव को बनाए रखने में कामयाब होगा।

'भाषा भारती' को यथाशीघ्र प्रकाशित–प्रसारित करवाने की दिशा में निरन्तर प्रोत्साहित और प्रेरित करने वाली हमारे विश्वविद्यालय की माननीया कुलगुरु प्रो. नीलिमा गुप्ता का पत्रिका प्रकाशन के शुभअवसर पर मैं तहेदिल से आभार व्यक्त करता हूँ। 'भाषा भारती' पर विश्वास कर अपने महत्वपूर्ण सृजन को इसमें सम्मिलित करने की अनुमति देने वाले सभी विद्वज्जनों के प्रति भी ह्रदय से साधुवाद। सम्पादक मंडल के समस्त सम्माननीय सदस्यगण, विश्वविद्यालय के शिक्षकों, अधिकारियों एवं कर्मचारियों से जो सहयोग मिला उसके लिए भी कोटिश: आभार। पत्रिका से प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से जुड़े सभी विद्वज्जनों के प्रति हम सब कृतज्ञ हैं। विश्वास है कि हमें आगे भी उनका सहयोग मिलता रहेगा। आप लोगों की बेबाक टिप्पणी, निष्पक्ष प्रतिक्रिया एवं महत्वपूर्ण सुझावों का इंतज़ार रहेगा।

हिन्दी दिवस
14 सितम्बर, 2024

(संतोष सोहगौरा)

हिन्दी उन सभी गुणों से अलंकृत है, जिनके बल पर वह विश्व की साहित्यिक भाषा की अगली श्रेणी में समासीन हो सकती है।

– राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त

अनुक्रमणिका

संदेश

संपादकीय

परिचर्चा

भविष्य के भारत की आधारशिला है राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 13
– प्रस्तुति: डॉ. विवेक जायसवाल

विमर्श

भारतीय ज्ञान–परम्परा और उसकी विश्वदृष्टि 20
– प्रो. अम्बिकादत्त शर्मा

भारतीय ज्ञान–परम्परा एवं हिन्दी 28
– डॉ. अजय कुमार पटनायक

नई शिक्षा नीति–2020 के क्रियान्वयन में स्थानीय निकायों की भूमिका 37
– प्रो. बी. के. श्रीवास्तव, डॉ. ब्रजेन्द्र कुमार

अध्यापक शिक्षा का विमर्श और राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 51
– डॉ. संजय शर्मा

राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 में भाषाओं के समागम का महत्त्व 54
– डॉ. नीरज उपाध्याय

राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 के भाषायी सरोकार और राजभाषा हिन्दी 61
– डॉ. हिमांशु कुमार

प्राचीन पाठ्यक्रम से प्रभावित राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 67
– डॉ. सञ्जय कुमार

भाषा और साहित्य

ग़ज़ल का ऐतिहासिक सफ़र 75
– प्रो. राजेन्द्र यादव, जुगल किशोर चौधरी

उर्दू और हिन्दी का रिश्ता 86
– डॉ. वसीम अनवर

शख्सियत

विलक्षण मेरी क्यूरी 93
– डॉ. सुमीता

कविता–कहानी

तिरिया चरित्तर 101
– आशुतोष

हिन्दी महिमा 109
– संतोष सोहगौरा

तीन कविताएँ 110
– डॉ. आफरीन खान

सत्यम् नाम है मेरा 112
– डॉ. रामहेत गौतम

हिन्दी दिवस 114
– श्रीमती जयंती सिंह 'मोहिनी'

कैमरा 115
– अंकित चौरसिया

क्षणिकाएँ 116
– डॉ. जयसिंह अलवरी

राजभाषा प्रगति प्रतिवेदन

राजभाषा प्रकोष्ठ की गतिविधियाँ 117
– प्रस्तुति: विनोद रजक

***

परिचर्चा : भविष्य के भारत की आधारशिला है राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020

– प्रस्तुति: डॉ. विवेक जायसवाल

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के प्रारूप पर देश भर में काफी विचार-विमर्श हुए हैं और बहुप्रतीक्षित शिक्षा नीति देश भर में लागू हो चुकी है। शिक्षा नीति के क्रियान्वयन की तीसरी वर्षगाँठ पर नई दिल्ली में अखिल भारतीय शिक्षा समागम का आयोजन प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी की गरिमामयी उपस्थिति में संपन्न हुआ था। राष्ट्रीय शिक्षा नीति के क्रियान्वयन और उसकी प्रगति को लेकर देश भर के शैक्षणिक संस्थाओं में तैयारी चल रही है। इस संदर्भ में प्रस्तुत है डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.) की कुलगुरु **प्रो. नीलिमा गुप्ता** से **प्रो. हेरेल थॉमस** और **प्रो. नवीन कानगो** की विशेष बातचीत:

प्रश्न-1: राष्ट्रीय शिक्षा नीति देश भर में लागू हो चुकी है। पूरे देश में इसको लेकर ख़ूब विचार-विमर्श हुए। आप इस शिक्षा नीति को पूर्ववर्ती नीतियों से किस प्रकार भिन्न देखती हैं?

जवाब: गौरतलब है कि जहां पिछली शिक्षा नीतियों में पठन-पाठन एवं परीक्षा प्रणाली पर ज़ोर दिया जाता था वहीं राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 पिछली शिक्षा नीतियों की बेहतर बातों को समायोजित करते हुए कई नए बिंदुओं को विमर्श के केंद्र में लाती है जिसमें मल्टीडिसप्लनरी एजुकेशन, मल्टीपल एंट्री-एक्जिट आदि का प्रावधान है। साथ ही रिसोर्स जेनरेशन, स्ट्रेंथनिंग ऑफ द रिसोर्सेज के साथ ही स्किल एजुकेशन एवं रिसर्च पर भी ज़ोर दिया गया है। नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति शिक्षार्थियों के समग्र विकास और उसे समाज के लिए उपयोगी बनाने पर केंद्रित है जो इंगित करता है कि यह नीति पिछली नीतियों से किस प्रकार भिन्न है।

प्रश्न-2: एनईपी 2020 के प्रभावी क्रियान्वयन के लिए विश्वविद्यालय ने कौन-कौन से प्रमुख कदम उठाये हैं? विश्वविद्यालय में किस कार्य योजना के तहत कार्य किया जा रहा है?

जवाब: डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय ने एनईपी 2020 को लेकर बहुत ही सकारात्मक पहल की है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति के अनुरूप हमें 3 + 2 की जगह 4 + 1 की प्रणाली को लागू करना है. इसमें 4 वर्ष का यूजी प्रोग्राम होगा और 1 साल का मास्टर्स होगा। सभी में मल्टीपल एंट्री-एक्जिट का विकल्प खुला रहेगा। विश्वविद्यालय ने 2022 में ही इस प्रणाली को क्रियान्वित कर लिया था जब दूसरे विश्वविद्यालय इसके क्रियान्वयन पर विचार ही कर रहे थे। विश्वविद्यालय ने इस पर गहन काम किया। एनईपी 2020 के जितने भी मैंडेट्स (आधिदेश) थे जैसे एबिलिटी इन्हैन्स्मेंट प्रोग्राम्स, स्किल डेवलपमेंट प्रोग्राम्स, वैल्यू इन्हैन्स्मेंट प्रोग्राम्स, इन सबको हम अपने पाठ्यक्रमों में शामिल कर चुके हैं। यह बताते हुए मुझे हर्ष है कि वर्ष 2023-24 से सभी परीक्षाएँ हम एनईपी 2020 के आधार पर ही कर रहे हैं।

प्रश्न-3: हाल ही में डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय को आपके गतिशील नेतृत्व में नैक द्वारा ए प्लस ग्रेड प्रदान किया गया है। विश्वविद्यालय को देश के प्रमुख विश्वविद्यालयों की सूची में जगह बनाने के लिए राष्ट्रीय शिक्षा नीति के किन-किन पहलुओं पर विशेष ध्यान देना चाहिए?

जवाब: मैं विश्वविद्यालय की पूरी टीम की आभारी हूँ जिनके अथक प्रयासों से हमें A+ ग्रेड मिला है। नैक ने भी एनईपी के क्रियान्वयन पर विश्वविद्यालय को परखा और वह इससे प्रभावित हुए, क्योंकि हम 2023 में ही इसके आधार पर परीक्षाएं करवाने लगे थे। रैंकिंग बढ़ाने के लिए मूल्यांकन के जो आधार हैं वह एनईपी में समाहित हैं। हम जब शोध की गुणवत्ता पर ध्यान देंगे, शिक्षक अपनी गुणवत्ता पर ध्यान देंगे, स्किल आधारित ज्ञान, मल्टी डिसिप्लिनरिटी जैसे बिन्दुओं पर ध्यान देंगे और उनके मानकों के आधार पर आगे बढ़ेंगे तो सिर्फ नैक ही नहीं, अन्य जितनी भी रैंकिंग इस समय हैं उन सभी में डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय अच्छा प्रदर्शन करेगा।

प्रश्न-4: आप इस बात से अवगत हैं कि वर्तमान में भारत दुनिया की सर्वाधिक आबादी वाला देश है और बढ़ती जनसँख्या एक बड़ी चुनौती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 के माध्यम से हम इस चुनौती को किस प्रकार संसाधन अथवा ताकत के रूप में विकसित कर सकते हैं?

जवाब: हमारी जनसंख्या में युवा वर्ग बढ़ रहा है, जापान जैसे देशों से अगर हम तुलना करें तो इसे हमें सकारात्मक तरीके से भी देखना चाहिए। इतनी युवा आबादी को शिक्षा देना एक चुनौतीपूर्ण कार्य है पर यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति में ऐसे कई पहलू हैं जो आने वाले समय में इस युवा आबादी को विश्व का लीडर बना सकेगी और उन्हें समाज के लिए तैयार करेगी। डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय जैसे अन्य विश्वविद्यालयों के सम्मिलित प्रयासों से यह मुमकिन होगा। देश का विकास करना है तो हमें अपनी शिक्षा का विकास भी करना होगा। क्योंकि सच ही कहा गया है, 'शिक्षा बदलेगी तो देश बदलेगा।' यदि इस दिशा में सोचेंगे तो अवश्य ही हम विश्वगुरु बनने की ओर अग्रसर होंगे।

प्रश्न-5: राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 के माध्यम से युवाओं में रोजगारपरक कौशल और दक्षता विकसित करना सबसे बड़ी आवश्यकता है। इस संदर्भ में विश्वविद्यालय के नवीन पाठ्यक्रम किस प्रकार नवाचारी सिद्ध होंगे?

जवाब: एनईपी का मुख्य जोर स्किल एजुकेशन अथवा कौशल विकास पर है। आत्मनिर्भर भारत का जो संकल्प माननीय प्रधानमंत्री जी ने लिया है उसको साकार करने हेतु यह जरूरी भी है। इस दिशा में डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय 34 प्रकार के स्किल इनहांसमेन्ट कोर्स संचालित कर रहा है। स्किल बेस्ड एजुकेशन के लिए विश्वविद्यालय में आरम्भ में हमने इंजीनियरिंग के दो पाठ्यक्रम कोर्स शुरू किये थे। और इस बार हम छः पाठ्यक्रम चला रहे हैं।

इसी तरह से मैनेजमेंट, एजुकेशन, लॉ, कम्युनिटी कॉलेज में भी हम स्किल जेनेरेशन पर काम कर रहें हैं। शॉर्ट टर्म स्किल बेस्ड प्रोग्राम के साथ ही अब हम शॉर्ट टर्म ट्रेनिंग प्रोग्राम की भी शुरुआत कर रहे हैं जो रिसर्च, कम्युनिकेशन, कम्प्यूटर कौशल पर आधारित होंगे। इससे हम सुनिश्चित कर रहे हैं कि छोटी से लेकर बड़ी स्किल छात्रों के पास रहे जिससे जब वे विश्वविद्यालय से निकलें तो डिग्री के साथ–साथ उनमें का 'कौशल' भी हुनर हो। इससे वह स्वयं भी काम कर सकेंगे और दूसरों को भी काम दे सकने में सक्षम होंगे।

प्रश्न–6: विश्वविद्यालय को ज्ञान और सृजन के एक उत्कृष्ट संस्थान के रूप में आगे ले जाने के लिए आप पाठ्यक्रमों, शिक्षकों, शोध एवं अन्य आवश्यक पहलुओं में किस तरह के नवाचारों को जरूरी मानती हैं?

जवाब: शोध से ही किसी भी विश्वविद्यालय की अकादमिक पहचान निर्मित होती है। हमारे विश्वविद्यालय में आठ रिसर्च सेंटर संचालित हैं। यहाँ इंटर डिसिप्लिनरी रिसर्च के साथ ही 'ओपन फॉर आल' व्यवस्था के साथ रिसर्च सुविधा उपलब्ध है। दूसरे विश्वविद्यालयों के लोग भी यहाँ आकर रिसर्च कर सकते हैं। उन्नत रिसर्च स्किल के लिए हम नियमित वर्कशाप आयोजित करते हैं। नवाचारी शोध देश की प्रगति का सूचक होता है। विश्वविद्यालय में एक इनोवेशन और स्टार्ट अप सेल भी संचालित है।

प्रश्न–7: 2047 में जब भारत 100 वर्ष आजादी के पूर्ण करेगा तब डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय अपनी स्थापना के 100 साल पूर्ण कर चुका होगा। अगले 25 वर्षों में आप राष्ट्रीय शिक्षा नीति के क्रियान्वयन के बारे में कैसे सोचती हैं?

जवाब: राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का क्रियान्वयन करते हुये हमने पाया कि यह नीति भविष्य के भारत की आधारशिला है। नीति का चरित्र समावेशी है। स्कूल शिक्षा के साथ, कौशल विकास शिक्षा, उच्च शिक्षा सभी स्तरों को यह नीति कारगर ढंग से समाहित करती है। नीति की संकल्पनाओं को देखकर समान्यत: कहा जा सकता है कि 25 वर्ष के बाद का भारत एक सशक्त और आत्मनिर्भर भारत होगा। ज्ञान अनुशासनों के बीच का अलगाव खत्म होगा। विद्यार्थियों के पास मुख्य विषय के साथ ही कोई अन्य या स्किल बेस्ड विषय या वैल्यू बेस्ड विषय चुनने की स्वतन्त्रता होगी। हमारे यहाँ से शिक्षित विद्यार्थी एक हाथ में डिग्री और और दूसरे हाथ में रोजगार लेकर निकलेगा। इस शिक्षा नीति के माध्यम से शिक्षित–प्रशिक्षित विद्यार्थियों के बल पर हमारा देश विश्व गुरु बनने के लिए अग्रसर होगा।

प्रश्न–8: ग्रॉस इनरोलमेंट रेश्यो (GER) को बढ़ाने की दिशा में आप क्या सोचती हैं? ऑनलाइन एजुकेशन की इसमें क्या भूमिका हो सकती है?

जवाब: ऑनलाइन एजुकेशन के साथ–साथ मैं गाँव को भी जोड़ना चाहूँगी। अभी विकास का दायरा शहरों तक सिमट कर रह गया है। ऑनलाइन एजुकेशन के माध्यम से गाँवों तक पहुँचा जा सकता है। हमें ग्रॉस इनरोलमेंट रेश्यो को बढ़ाने के लिए गाँवों में बिजली और इंटरनेट की

सुविधा को मजबूत कर उससे जोड़ना होगा। हमें यह सुनिश्चित करना होगा कि शिक्षा की पहुँच सभी के पास हो और इसकी सतत निगरानी हो। एक निर्धारित लक्ष्य के साथ हम देश के अलग–अलग हिस्सों में काम करके इसकी प्रगति को देखेंगे। निश्चित ही देश की साक्षरता दर बढ़ाने में भी हम सक्षम होंगे।

प्रश्न–9: एनईपी समग्र शिक्षा की बात करती है और विश्वविद्यालय में एक केन्द्रीय विद्यालय भी संचालित है।स्कूल से लेकर पी जी तक एनईपी को कैसे क्रियान्वित किया जा रहा है?

जवाब: हमारे यहाँ स्कूल से लेकर पीएचडी तह शिक्षा की व्यवस्था है। इस दृष्टि से हमारा विश्वविद्यालय एक पूर्ण कैंपस है जहाँ केजी से लेकर पी.एचडी. तक की पढ़ाई होती है। हम इंटीग्रेटेड शिक्षा के माध्यम से छात्र–छात्राओं को फाउंडेशन लेवल पर अच्छी शिक्षा दे रहे हैं। यही विद्यार्थी आगे चलकर एनईपी 2020 के उद्देश्यों के साथ और अधिक निखर जायेंगे। हमारी कोशिश एक पूर्ण विद्यार्थी के निर्माण की है जो किताबों, डिग्रियों से आगे निकलकर मानवीय मूल्य और चारित्रिक विकास के नए मानदंड रचेंगे। एनईपी 2020 एक ढंग से प्राचीन भारतीय गुरुकुल व्यवस्था की आधुनिक कार्य–योजना है जिसमें गुरु–शिष्य के बीच एक उन्नत इंटीग्रेटेड पद्धति विकसित होगी। जैसे ही एनईपी 2020 के प्रस्तावों को पूर्णतया लागू कर लिया जायेगा तब हम एक सचेत, प्रबुद्ध और आत्मनिर्भर विद्यार्थियों के निर्माण में सक्षम होंगे।

प्रश्न–10: भारत एक बहुभाषा भाषी देश है। भाषाओं की समृद्धि और विकास में राष्ट्रीय शिक्षा नीति की क्या भूमिका है?

जवाब: भाषाओं की बात करें तो आंकड़ों के अनुसार भारत में 780 से ज्यादा भाषाएँ बोली जाती हैं पर इनमें से 122 भाषाएँ ही ऐसी हैं जो 10,000 लोग से ज्यादा लोग बोलते हैं। 22 भाषाएँ ऐसी हैं जिनको अधिकारिक भाषा माना गया है। एनईपी 2020 इन भाषाओं के संरक्षण के लिए कृतसंकल्पित है। सबसे खास बात यह है कि अपनी मातृभाषा में सीखना आसान होता है। इस नीति की सबसे बड़ी भूमिका इस रूप में है कि विशेषतौर पर ग्रामीण क्षेत्रों के विद्यार्थियों के लिए अपनी मातृभाषा में तकनीकी शिक्षा प्राप्त करना सुलभ हो सकेगा।

प्रश्न–11: नई शिक्षा नीति में 'मूक्स' (MOOCS) एक बहुत ही महत्वपूर्ण तत्व है। विद्यार्थियों को इस दिशा में प्रेरित करने के लिए क्या किया जाना चाहिए?

जवाब: मूक्स कोर्सेज की शुरुआत बहुत अच्छे और व्यापक उद्देश्यों के साथ हुई है। ज्ञान के प्रसार का यह एक सुविधाजनक प्लेटफॉर्म है। लेकिन इस बारे में छात्र–छात्राओं में जागरूकता कम है। इसके लिए प्रत्येक विश्वविद्यालय को प्रयास करना पड़ेगा और उन्हें कई कार्यक्रम आयोजित करके और अपनी वेबसाइट पर अपील करके भी इसके बारे में बताना पड़ेगा। यदि सभी विश्वविद्यालय मूक्स के महत्त्व एवं उपयोगिताओं को लेकर चर्चा करें तो मुझे लगता है कि हमें सफलता अवश्य मिलेगी।

प्रश्न–12: एकेडमिक बैंक ऑफ क्रेडिट्स (ABC) राष्ट्रीय शिक्षा नीति का एक नवाचारी आयाम है। यह विद्यार्थियों के भविष्य के साथ भी जुड़ा है। भविष्य में इसकी उपयोगिता के क्या अच्छे परिणाम आ सकते हैं?

जवाब: एकेडमिक बैंक ऑफ क्रेडिट्स छात्रों के लिए एक विशेष सुविधा है। स्थानांतरण, विवाह आदि अनेक कारणों से विद्यार्थियों को एक–दो वर्ष बाद अपनी पढ़ाई छोड़नी पड़ जाती है। ऐसी परिस्थितियों में विद्यार्थी अपने क्रेडिट्स को बैंक की तरह एकेडमिक बैंक ऑफ क्रेडिट्स में डिपॉजिट कर सकते हैं। जब यह पॉलिसी आई थी तो लोगों की समझ में नहीं आया कि यह कैसे संभव हो पाएगी, लेकिन मुझे प्रसन्नता है कि हमारे विश्वविद्यालय के मीडिया सेंटर द्वारा तैयार किए गए दो प्रोमोज को हमने यूजीसी से साझा किया। उन्होंने देश के सभी विश्वविद्यालयों के साथ इसे साझा किया। इसी तरह के प्रयास हर विश्वविद्यालय को करना चाहिए। इसके लिए यूजीसी ने विश्वविद्यालयों से निवेदन भी किया है। इस योजना के प्रति विद्यार्थियों का उत्साहजनक प्रतिक्रिया है।

प्रश्न–13: वर्तमान राष्ट्रीय शिक्षा नीति, बहु–ज्ञानानुशासनिक एप्रोच को बढ़ावा देने की बात करता है साथ ही यह आधुनिक समय की जरुरत भी है, ऐसे में आप विद्यार्थियों में एक समग्र वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विकास के लिए बहु–ज्ञानानुशासनिक एप्रोच के क्रियान्वयन हेतु किस प्रकार कार्य कर रहीं हैं?

जवाब: यह एक बहुत अच्छा कदम है। मैं कुछ दिन पहले एक विदेशी विश्वविद्यालय के फैकल्टी और विद्यार्थियों से चर्चा कर रही थी, वहाँ एक मेडिकल का छात्र साइकोलॉजी पढ़ रहा है, इंजीनियरिंग का छात्र बायो–केमिस्ट्री भी ले सकता है। पहले मुझे लगता था ये लोग कैसे मैनेज करते हैं? लेकिन अब यही नीति भारत में भी लागू की जा रही है। आज शिक्षा में बहु–ज्ञानानुशासनिक शिक्षा, बहुआयामी विकास का एक महत्वपूर्ण माध्यम भी है, क्योंकि बच्चों में संज्ञानात्मक, भावात्मक एवं अन्य सामाजिक दृष्टिकोणों से कई कौशल एवं प्रतिभाएं भी निहित होती हैं। सिर्फ एक ज्ञानानुशासन में बंध जाने से उसकी अपनी आंतरिक योग्यता एवं क्षमता प्रभावित होती है। पहले यदि किसी विद्यार्थी ने विज्ञान विषयों का चयन किया है तो वो भौतिकी, रसायनशास्त्र, गणित, जीवविज्ञान या सांख्यिकी के मूल विषय के अतिरिक्त वह अन्य किसी भी वर्ग या विषय यथा–मानविकी, कला या वाणिज्य की तरफ देख भी नहीं सकता था। चाहे उन विषयों से संबंधित उनके अंदर कितनी भी प्रतिभायें क्यों न हो, परन्तु वर्तमान शिक्षा नीति के कारण अब यह सब कुछ यहाँ भी संभव हो सकता है। विद्यार्थियों में अन्तर्निहित क्षमताओं का विकास आवश्यक है। पिछली शिक्षानीतियों में उनकी पूरी अन्तर्निहित क्षमताओं का सम्यक् विकास नहीं हो पाता था। लेकिन आज इस नीति के कारण यह सब कुछ संभव हुआ है। 'एक्सप्रेशन ईज द बेस्ट मनिफेस्टेशन' जब एक विद्यार्थी पूर्ण क्षमता के साथ प्रदर्शन करेगा तो मुझे लगता है कि इसके परिणाम भी बहुत ही सकारात्मक होंगे।

प्रश्न–14: उच्च शिक्षा में नामांकन लेने वाले विद्यार्थियों और सभी स्टेकहोल्डर नई शिक्षा नीति में निहित सभी प्रावधानों एवं प्रक्रियाओं से अभी तक पूर्णतः अवगत नहीं हो पाए हैं ऐसी स्थिति में सभी को जागरूक करने हेतु आपके विचार से क्या प्रयास किये जाने चाहिए?

जवाब: डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर में इस दिशा में काफी प्रयास किए हैं। इस विषय पर कई सेमिनार एवं वेबिनार आयोजित किए हैं। यहाँ तक कि कोविड के दौरान भी इस दिशा में काफी सकारात्मक पहल की गयी है। विश्वविद्यालय में छात्र–छात्राओं और शिक्षकों को जोड़ते हुए विश्वविद्यालय द्वारा संचालित सभी व्यवसायिक एवं अन्य पाठ्यक्रमों को राष्ट्रीय शिक्षा नीति द्वारा प्रतिपादित पाठ्यक्रम संरचना एवं गुणवत्ता आधारित परिणाम के आधार पर संशोधित किया गया है, पाठ्यक्रमो में मल्टीपल एंट्री एवं एग्जिट, स्नातक स्तर पर चार वर्षीय एकीकृत शोध पाठ्यक्रम आरम्भ किए जा रहे हैं साथ ही, सभी पाठ्यक्रमों को अंतर–अनुशासनिक (Inter-disciplinary) बनाने हेतु पाठ्यक्रम संरचना में आवश्यक संशोधन किये गए हैं. पिछले वर्ष जब हमने राष्ट्रीय शिक्षा नीति के अनुसार संशोधन किये तब हमारे विद्यार्थियों के बीच काफी शंकाएं थीं, वह नहीं जानते थे कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति क्या है? हम कैसे और कौन से विषयों का चुनाव कर सकते हैं। इसमें हमारे शिक्षकों ने विद्यार्थियों की मदद की। उनके अभिविन्यास कार्यक्रमों का आयोजन हुआ, ताकि राष्ट्रीय शिक्षा नीति को लेकर उनके भीतर स्पष्ट एवं सही समझ विकसित की जा सके।

प्रश्न–15: भारत सरकार शिक्षकों की नियुक्ति को लेकर काफी प्रतिबद्ध है। आपके अनुसार राष्ट्रीय शिक्षा नीति को दृष्टिगत रखते हुए किस प्रकार के शिक्षकों की नियुक्ति होनी चाहिए?

जवाब: हम लोग औपचारिक बैठकों के दौरान शिक्षकों की गुणवत्ता पर काफी विमर्श करते हैं कि शिक्षकों की गुणवत्ता कैसे बढ़ाई जाए। लेकिन मैं सोचती हूं कि शिक्षकों की गुणवत्ता के साथ ही साथ विद्यार्थियों के अनुपात में उनकी संख्या भी उतनी ही महत्वपूर्ण है। आज भी बहुत से संस्थानों एवं विश्वविद्यालयों में शिक्षकों के पद काफी लम्बे समय से रिक्त पड़े हैं। मुझे इस बात की ख़ुशी है कि केंद्र सरकार मिशन मोड में शिक्षकों की भर्ती को लेकर प्रतिबद्ध है। हमारा विश्वविद्यालय भी इस दिशा में आगे बढ़ रहा है। शिक्षक कैसे होने चाहिए? इस पर मेरा ये अभिमत है कि शिक्षा के क्षेत्र में आये व्यापक बदलावों को देखते हुए अब नए शिक्षकों में बहुआयामी प्रतिभा को दृष्टिगत रखते हुए उनके चयन एवं कार्य शैली को भी राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 के मापदंडों पर भी परखना होगा ताकि वे भविष्य में विद्यार्थियों एवं नीतियों की कसौटी पर खरे उतर सकें।

प्रश्न–16: राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 को लेकर जनसामान्य के भीतर भी एक उत्सुकता दिखाई दे रही है लेकिन अधिकांशतः यह देखने में आ रहा है कि जनसामान्य में इसकी आधारभूत समझ अभी नहीं बन पाई है। आपसे यह जानना चाहेंगे कि एक साधारण नागरिक इस नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति को कैसे आत्मसात करे?

जवाब: यह निष्कर्ष की दिशा में ले जाने वाला प्रश्न है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का मुख्य उद्देश्य ऐसे सार्वभौमिक नागरिक का निर्माण करना है जो अपनी परंपरा, मूल्य एवं विचारों से लैस होकर व्यापक वैश्विक फलक पर अपनी क्षमता, कौशल और नागरिक बोध के साथ अपनी पहचान स्थापित कर सके। चूंकि किसी भी शिक्षा नीति का लक्ष्य दूरगामी होता है एवं वह भविष्य की चुनौतियों एवं संभावनाओं को दृष्टिगत रखते हुए अपने नागरिकों का सम्यक विकास उसी के अनुरूप करने का प्रयास करता है। यह शिक्षा नीति शिक्षा के वैश्विक फलक पर उन्हीं उद्देश्यों को सामने रखकर कार्य कर रहा है। भले ही अभी इस नीति का लक्ष्यगामी प्रभाव पूर्णतः स्पष्ट न हो रहा हो लेकिन समय के साथ इसके क्रियान्यवन के आधार पर यह नीति भारत की अभी तक की सबसे सफल एवं प्रभावी नीति के रूप में परिलक्षित होगी। एक सामान्य नागरिक के तौर पर देश और समाज में होने वाले बदलावों की संस्था के रूप में विश्वविद्यालय एवं शिक्षा को देखा जाता है। ऐसी स्थिति में सामान्य जन जब इस नीति के परिणामों से अवगत होंगे तो निश्चित रूप से इस शिक्षा नीति को आत्मसात करने में अग्रणी भूमिका निभायेंगे।

सहायक प्राध्यापक
संचार एवं पत्रकारिता विभाग
डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय
सागर (म.प्र.)

- **हिन्दी राष्ट्रीयता के मूल को सींचती और दृढ़ करती है।**
  – राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन
- **हिन्दी से किसी भारतीय भाषा को भय नहीं है। यह सबकी सहोदर है।**
  – महादेवी वर्मा
- **हिन्दी हमारे राष्ट्र की अभिव्यक्ति का सरलतम स्रोत है।**
  – सुमित्रानंदन पंत

भारतीय ज्ञान-परम्परा और उसकी विश्वदृष्टि

– प्रो. अम्बिकादत्त शर्मा

उपक्रम :

किसी भी सभ्यता और संस्कृति के पुष्पित और पल्लवित होने तथा उसे कायम बने रहने के पीछे ज्ञान–परम्परा की महती भूमिका होती है। वास्तव में एक विशेष प्रकार की ज्ञान–परम्परा ही एक विशेष प्रकार की सभ्यता और संस्कृति की धारक होती है। सभ्यता और संस्कृतियों का अधिष्ठान भौगोलिक नहीं अपितु ज्ञान–परम्परा ही होती है। यह बात अलग है कि कोई भी सभ्यता और संस्कृति एक भौगोलिक परिवेश में ही मूर्त रूप ग्रहण करती है। किसी भी ज्ञान–परम्परा का विकास एकरेखीय रूप में न होकर बहुआयामी रूप से होता है। इसीलिए सभ्यता और संस्कृतियों का रूपायन भी बहुआयामी होता है। हाँ किसी सभ्यता और संस्कृति की पहचान इस बात पर निर्भर करती है कि वह किस प्रकार के ज्ञान का मानकीकरण और आदर्शीकरण करती है। आदर्शीकृत ज्ञान ही वास्तव में पुरुषार्थ–साधना में फलित होता है। भारतीय सभ्यता और संस्कृति भी दुनिया की प्राचीनतम समृद्धतम और अद्यतन सभ्यता और संस्कृति है। इसकी निरन्तरता का शानी तो दुनिया की और कोई सभ्यता और संस्कृति है ही नहीं। अतः यह तो स्वाभाविक है कि इसके अपने सुदीर्घ जीवनकाल में उन सभी प्रकार के ज्ञान–विज्ञान, कला और कौशलपरक अनुशासनों का न्यूनाधिक विकास हुआ ही होगा जो इसे अबतक तमाम उतार चढ़ाओं के बावजूद धारण किये हुए हैं। वास्तव में जब हम भारतीय ज्ञान–परम्परा की बात करते हैं तो उसका आशय उन सभी प्रकार के ज्ञानात्मक उपक्रमों से है जो भारतीय सभ्यता और संस्कृति की गतिशीलता को एक विशेष प्रकार की विश्वदृष्टि की ओर उन्मुख किये रही है। सम्भावना के बतौर ही सही, लेकिन यह बात सोची जा सकती है कि सिन्धुघाटी की अतिनगरीय सभ्यता के विनाश का प्रतिस्मरण हमारे वैदिक ऋषियों को रहा होगा। सम्भवतः इसी कारण गंगा के समतल मैदानों और समशीतोष्ण जलवायु वाले परिक्षेत्र में ग्राम्य सभ्यता और आरण्य जीवन शैली के निर्माण के लिए एक विशेष प्रकार की अन्तर्दृष्टि और ज्ञान का मानकीकरण और आदर्शीकरण उन ऋषियों ने किया होगा। यह विश्व की नैतिक व्यवस्था की नियामक ऋतानुगामी अन्तर्दृष्टि थी जो भारतीय ज्ञान–परम्परा में ज्ञान के विनिर्माण और मानकीकरण का नीति निर्देशक तत्त्व बनी। इसी अन्तर्दृष्टि और ज्ञान का अनुवाद जिस सभ्यता और संस्कृति में हुआ है, वही भारतीय सभ्यता और संस्कृति है। वस्तुतः जिसे हम भारतीय ज्ञान–परम्परा कहते हैं उसकी यही संक्षिप्त प्रस्तावना है।

भारतीय ज्ञान–परम्परा का भौगोलिक मानचित्र :

भारतीय ज्ञान–परम्परा को भूगोलवाची अर्थ में हिन्दू ज्ञान–परम्परा भी कहते हैं। यह

सिन्धु नदी के उसपार के परिक्षेत्र में रहने वाले निवासियों की ज्ञान–परम्परा और उनकी भौगोलिक एकता की वाचक ज्ञान–परम्परा है। यह बात अलग है कि हिन्दू शब्द ईरानियों द्वारा सिन्धु शब्द के अपभ्रंश उच्चारण के कारण प्रचलन में आया हुआ एक रूढ़ लेकिन स्वीकृत पद है। इससे जिस भूभाग को संकेतित किया जाता है उसे ही हिन्दुस्तान कहते हैं। इसका प्राचीन नाम आर्यावर्त भी था, लेकिन दोनों के भौगोलिक विस्तार में थोड़ा ही सही, अन्तर अवश्य है। आर्यावर्त पूर्वी समुद्र से लेकर पश्चिमी समुद्र तक और हिमालय से लेकर विन्ध्याचल तक के परिक्षेत्र को कहा जाता है परन्तु हिन्दुस्तान की दक्षिणी सीमा विंध्यपर्वत से आगे कन्याकुमारी तक जाती है। इस व्यापक भूभाग की सभ्यता और संस्कृति के पीछे जिस ज्ञान–परम्परा की सक्रिय भूमिका रही है उसे ही भारतीय ज्ञान–परम्परा से अभिहित किया जाता है। यह बात अलग है कि किसी भी ज्ञान–परम्परा के भौगोलिक मानचित्र की कोई स्थिर अवधारणा नहीं होती है। उसमें विस्तार और संकोच दोनों ही होते रहते हैं। ज्ञान–परम्परा के भौगोलिक मानचित्र में भाषायी भूगोल, सांस्कृतिक भूगोल और राजनीतिक भूगोल भी सम्मिलित हुआ करते हैं। इसी कारण किसी भी ज्ञान–परम्परा के भौगोलिक मानचित्र का विचार उसकी संक्रान्तिक सीमाओं के आधार पर भी की जाती है। ज्ञान–परम्परा की संक्रान्तिक सीमा अकसर भाषायी, सांस्कृतिक और राजनीतिक भूगोल का अतिक्रमण भी करती है। इस दृष्टि से भारतीय ज्ञान–परम्परा की संक्रान्तिक सीमा को पश्चिम में मध्यपूर्व से लेकर पूर्व में सुदूर पूर्व तक और उत्तर में हिमालय के पार से दक्षिण में हिन्दमहासागर पर्यन्त विस्तृत माना जा सकता है।

भारतीय ज्ञान–परम्परा का सनातन अर्थ–सन्दर्भ :

भारतीय ज्ञान–परम्परा के उपर्युक्त भूगोलवाची अर्थ से भिन्न उसके स्वरूप को बताने वाला जो दूसरा शब्द है वह है – सनातन ज्ञान–परम्परा। साधारण तौर पर इसके सनातन होने का अर्थ इसकी प्राचीनता से लिया जाता है। यह सही भी है, क्योंकि विश्व के ज्ञात इतिहास में उसके प्राचीन और अद्यतन कोई दूसरी ज्ञान–परम्परा नहीं रही है। पुनः इसे सनातन इसलिए भी कहा जाता है कि इसकी शुरूआत इतिहास के किसी निश्चित काल–खण्ड से नहीं हुई है जबकि विश्व की अन्य प्रमुख ज्ञान–परम्पराओं का ऐतिहासिक प्रारम्भ सुविदित है। परन्तु भारतीय ज्ञान–परम्परा को सनातन कहे जाने के कालवाची अर्थों से भिन्न उसका एक गहरा अर्थ भी है। वह यह कि भारतीय ज्ञान–परम्परा का अनुवाद कर्त्तव्याकर्त्तव्य के जिन विधि–निषेधों की सांस्कृतिक अथवा धार्मिक व्यवस्था में हुआ है वह किसी शास्ता अथवा देवदूतों के माध्यम से प्राप्त ईश्वरीय आदेश अथवा परामर्श नहीं बल्कि स्वतंत्र मानवीय विवेक की सार्वभौमिक गवेषणाएँ हैं और जिनका निर्धारण या तो संसार के वास्तविक स्वरूप और उसे धारण करने वाले नियमों (ऋत्) या फिर मनुष्य की अन्तरात्मा जहाँ भूतमात्र की आत्मौपम्यता का स्वाभाविक विवेक जागता है; को सन्दर्भ बनाकर किया जाता है। इसलिए भारतीय ज्ञान–परम्परा धार्मिक पोथियों में सदा–सर्वदा के लिए निबद्ध कोई अनुलंध्य आदेश नहीं बल्कि

संसार की वास्तविकता और मनुष्य की अन्तरात्मा के बीच आदर्शतम ताल–मेल के साथ जीवन का सर्वोत्तम विनियोग है।

भारतीय ज्ञान–परम्परा की आत्म–प्रतिमा :

जगत् के वास्तविक स्वरूप को संदर्श बनाकर जब किसी ज्ञान–परम्परा का अनुवाद जीवन–लोक में होता है तो प्रवृत्तिमूलक लोकसिद्धि उसका जीवनादर्श बनता है। उसी तरह अन्तरात्मा को संदर्श बनाकर जब ज्ञान–परम्परा जीवन–लोक में अनूदित होती है तो निवृत्तिमूलक स्वरूपसिद्धि उसका जीवनादर्श बनता है। भारतीय ज्ञान–परम्परा की आत्मप्रतिमा इन दोनों प्रकार के जीवनादर्शों के सुन्दर सहभाव से निर्मित हुई है। इसलिए इसके अन्तर्गत विकसित ज्ञान–विज्ञान की समस्त शाखायें लोकसिद्धि और स्वरूपसिद्धि के जीवनादर्श को ही अपने–अपने तरीकों से पुष्ठ करती हैं। ऐसा माना जाता है कि भारतीय ज्ञान–परम्परा में लोकभावना, जगद्भावना की प्रवृत्तिमूलक प्रधानता आर्य परम्परा से आई है और लोकजीवन का अतिक्रमण करते हुए स्वरूपसिद्ध (मोक्ष) को ही श्रेय समझने का विचार द्राविड़ परम्परा की देन है। इतिहास के गर्भ में छिपी इस बात को लेकर कितना भी विवाद क्यों न हो, परन्तु इतना तो निर्विवाद है कि भारतीय ज्ञान–परम्परा की आत्मप्रतिमा लोकसिद्धि (धर्म) और स्वरूपसिद्धि (मोक्ष) के आदर्श से ही लक्षित होती है। इन दोनों जीवनादर्शों को भारतीय ज्ञान–परम्परा का मौलिक प्रतीक कहा जाना अधिक उचित है। महर्षि कणाद (वैशेषिक सूत्र – 1/1/2) ने 'यतोऽभ्युदयो निःश्रेयसः सिद्धिः सः धर्मः' कहते हुए भारतीय ज्ञान–परम्परा की आत्मप्रतिमा को ही एकतरह से परिभाषित किया है। इस परिभाषा में अभ्युदय का अर्थ लोकसिद्धि और निःश्रेयस का अर्थ स्वरूपसिद्धि सुतरां स्पष्ट है। महाभारतकार ने भी 'धर्मार्थकामोक्षानां इतिहास समन्वितम्...' कहते हुए भारतीय ज्ञान–परम्परा के इसी टेलियोलॉजी को संकेतित किया है। भारतीय ज्ञान–परम्परा की आत्मप्रतिमा के उपर्युक्त दोनों मूलभूत प्रतीकों ने सम्पूर्ण भारतीय वाङ्मय के काव्यों, कलाओं, धर्म, दर्शन, इतिहास, साहित्य और पुराकथाओं के साथ–साथ वैयक्तिक एवं सामाजिक आचरण के विधानों को किस तरह प्रभावित और अनुप्राणित किया है, यह खुली आँख से देखने की चीज है। यहाँ तक कि 'कामशास्त्र' भी इसका अपवाद नहीं है। इसने भारतीय सभ्यता और संस्कृति तथा उसकी धार्मिक चेतना को इतना समन्वयात्मक चरित्र और आत्मसीमन की क्षमता प्रदान किया है कि प्रश्न और प्रतिप्रश्न, पूर्वपक्ष और उत्तरपक्ष दोनों ही इसके अंगभूत हो जाते हैं। विरोधों और विचित्रताओं को आत्मसात् कर लेने की इसमें अद्भुत क्षमता है।

भारतीय ज्ञान–परम्परा का वाङ्मय संस्थान :

भारतीय ज्ञान–परम्परा कोरे आस्थाओं की संहिता न होकर जीवन और जगत् के प्रति आत्मचेतन विवेक से उपजा हुआ एक औचित्यविधान है। इसके पार्श्व में जो आत्मचेतन विवेक की सुदीर्घ परम्परा रही है उसी की अभिव्यक्ति ऋषियों, मुनियों और व्यास परम्परा के माध्यम

से श्रुति, स्मृति, शास्त्र, पुराण, दर्शन, नीति और महाकाव्यों के रूप में वाग्विग्रहित हुई है। इन सबों का सम्मिलित रूप ही भारतीय ज्ञान–परम्परा का लिपिबद्ध वैचारिक संस्थान है।

श्रुति का अर्थ वेद है जो ऋग्वेद, सामवेद, अथर्ववेद और यजुर्वेद के नाम से प्रसिद्ध हैं। भारतीय ज्ञान–परम्परा के आद्य स्रोत के रूप में वेदों को अपौरुषेय और पोरुषेय दोनों माना जाता है, लेकिन इससे उनकी सर्वोपरि प्रामाणिकता पर कोई आँच नहीं आती। यद्यपि वैदिक सूक्तों एवं मंत्रों के उपस्थापक ऋषि ही होते हैं लेकिन उन्हें मंत्रकर्त्ता नहीं अपितु मंत्रद्रष्टा (ऋषियोः मंत्र द्रष्टारः) कहा गया है। प्रत्येक वेद की बहुत सी शाखायें हैं जिनमें कुछ प्राप्त हैं और शेष अन्य लुप्त हो गये हैं। मुख्य रूप से वेदों के चार भाग होते हैं जिन्हें मंत्र, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् कहा जाता है। प्रमुख स्मृतियों की संख्या भी चार मानी जाती है। इन्हें मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति, शंख स्मृति और पराशर स्मृति के नाम से जाना जाता है। शास्त्र छः हैं जो वास्तव में विशिष्ट विद्यायें हैं। इन्हें शिक्षा, कल्प, निरुक्त, छन्द, व्याकरण और ज्योतिष के रूप में परिगणित किया गया है। वेदांग इनका अपर नाम है। देखने लायक बात यह है कि छः वेदांगों में चार (शिक्षा, व्याकरण, निरुक्त, छन्द) प्रत्यक्ष रूप से भाषा विषयक हैं। शिक्षा भाषा को उसके ध्वन्यात्मक रूप में विचारती है। निरुक्त उसे अर्थविज्ञान के परिवेश में देखता है। व्याकरण भाषा को संरचना के रूप में देखता है और छन्द उसे एक लय के रूप में देखता है। शेष दो शास्त्र कल्प और ज्योतिष क्रमशः धर्म विज्ञान और खगोल विज्ञान और गणित विद्या से सम्बन्धित हैं। इसके अतिरिक्त वैदिक वाङ्मय में उपवेदों का भी उल्लेख आता है। वेदांगों का उल्लेख तो उत्तरवैदिक साहित्य में मिलता है परन्तु उपवेदों की चर्चा परवर्ती प्रतीत होती है। किन्तु इसका अर्थ यह भी नहीं कि जो विद्यायें उपवेदों में निहित हैं वे वैदिक युग में नहीं थीं। आयुर्वेद, शिल्पशास्त्र, धनुर्वेद और दण्डनीति ये सभी विद्यायें अपनी परम्परा का मूल वैदिक ऋषियों से ही बताती है। पुराण अठारह हैं जिनमें इतिहास, कथा, वंशावली और दृष्टान्तों–आख्यानों के माध्यम से वैदिक अन्तर्दृष्टियों का लोकजीवन में संस्थानीकरण किया गया है। भारतीय ज्ञान–परम्परा के दार्शनिक पक्ष को प्रस्तुत करने वाले छः आस्तिक दर्शन जिन्हें सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा और वेदान्त के नाम से जाना जाता है। चार्वाक, बौद्ध और जैन दर्शन को नास्तिक कोटि में रखा गया है। वेदों के प्रामाण्य को स्वीकार नहीं करने के कारण ही इन्हें नास्तिक कहा गया है (नास्तिको वेदनिन्दकः)। यद्यपि भारतीय दर्शनों का यह विभाजन पर्याप्त नहीं है। यदि इसे अद्यतन किया जाये तो दार्शनिक सम्प्रदायों की संख्या निम्न रूप में परिगणित की जा सकती है। बौद्ध, मीमांसा, वेदान्त, सांख्य, वैशेषिक, न्याय, जैन, योग, व्याकरण दर्शन, चार्वाक, शैव सिद्धांत, काश्मीर शैव, अद्वैत वेदान्त, विशिष्टाद्वैत, वीर शैव, न्याय वैशेषिक, निम्बार्क वेदान्त, विशिष्टाद्वैत, हठ योग, भक्ति दर्शन, वल्लभ वेदान्त, द्वैताद्वैत, योगवासिष्ट, अचिंत्यभेदाभेद। सर्वदर्शनसंग्रहकार माधवाचार्य ने भारतीय दार्शनिक सम्प्रदायों की संख्या बारह मानी है। नीति ग्रंथों में शुक्र नीति, विदुर नीति और कामंदक नीति का भारतीय ज्ञान–परम्परा में बड़ा आदर है। अंत में महाकाव्यों की परम्परा में रामायण, महाभारत, रामचरितमानस और अश्वघोष रचित बुद्धचरित महत्त्वपूर्ण माने जाते हैं। ये

महाकाव्य कथानक के माध्यम से एक सम्पूर्ण संसार और संसार में भारतीय जीवन–दृष्टि के आदर्शतम स्वरूप को चरितार्थ हुआ दिखाते हैं। वास्तव में इन महाकाव्यों को धर्ममय जीवन की जीवनगाथा कहा जाना अधिक उचित है। माना जाता है कि भारतीय ज्ञान–परम्परा का निचोड़ इन महाकाव्यों में मानव जीवन के समस्त अन्तर्द्वन्द्वों के साथ, उनका समाधान करते हुए प्रस्तुत किया गया है। भारतीय ज्ञान–परम्परा के इस विशाल वाङ्मयी संस्थान में जीवन और जगत् के परमार्थ से लेकर व्यवहार पर्यन्त समस्त प्रोरणाओं, अभीप्साओं और लोकजीवन के बहुविध रूपों एवं संस्थानों का समावेश किया गया है। परा और अपरा विद्या के रूप में सम्भवः ज्ञान के समस्त अनुशासनों का विकास इसके अन्तर्गत न्यूनाधिक रूप में सम्भव हुआ है। इनमें विविधता बहुत है, पक्ष और विपक्षों की भरमार है, फिर भी सबके सब निगमागमों के ही अर्थ विस्तार हैं। मनु ने भी कहा है– इतिहास पुराणाभ्यां वेदं समुपवृंहयेत्। भारतीय ज्ञान–परम्परा के वाङ्मयी संस्थान की अद्‌भुत विशेषता यह है कि यह कोई स्थावर हो गई रूढ विचार–परम्परा नहीं बल्कि सूत्र, भाष्य, वृत्ति, वार्तिक, टीका और बहुविध प्रकार के व्याख्या ग्रन्थों के माध्यम से उत्तरोत्तर अपना आलोचनात्मक परिष्कार और अपनी अर्थ–चेतना के विस्तार में सतत् संलग्न जीवन्त विचार–परम्परा है।

भारतीय ज्ञान–परम्परा की समवेत विश्वदृष्टि :

भारतीय ज्ञान–परम्परा अपने स्वरूप में एक सावयवी विचार–परम्परा है। इसलिए भारतमूलीय ज्ञान की विभिन्न विद्याओं, शाखाओं और विद्यास्थानों को एकबारगी एक दूसरे से अलग करके नहीं देखा–समझा जा सकता है। सभी प्रकार के शास्त्र और विद्यायें एक समग्र विश्वदृष्टि की अनुशयी होकर ही भारतीय ज्ञान–परम्परा में अपनी–अपनी भूमिका और प्रस्थिति में फलवती होती हैं। अतः भारतीय ज्ञान–परम्परा समवेत रूप में जिस विश्वदृष्टि के साथ फलित होती है उसे समझे बिना भारतीय ज्ञान–परम्परा के स्वरूप और उसकी निज विशेषता को समझा नहीं जा सकता। भारतीय ज्ञान–परम्परा की विश्वदृष्टि का एक आधारभूत मौलिक पहलु यह है कि समस्त सृष्टि ही अपने आप में एक समग्र नैतिक–व्यवस्था है। सम्पूर्ण प्रकृति की गतिशीलता कोई अस्त–व्यस्त और बेमेल स्वच्छंदता नहीं बल्कि उसमें एक लय और छंदबद्धता है। ऋत्, सत्य और यज्ञ की वैदिक अवधारणा के मूल में यही दृष्टि रही है। ऋत् ही विश्व–व्यवस्था का नियामक और धारक है। जड़, चेतन, स्थावर, जंगम, उद्‌भिज, सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र, देवता और तीनों भुवन, यहाँ तक कि ऋतुएँ भी ऋत् से ही अधिशासित होकर अपनी–अपनी प्रस्थिति और भूमिका में नियोजित हैं। धर्म के विधि–निषेध और नैतिक विधान भी ऋत् की सामाजिक स्तर पर अभिव्यक्ति है। भारतीय ज्ञान–परम्परा में मुनष्य के आचार और व्यवहार, सामाजिक सम्बन्ध और कर्तव्य न तो उसकी निरंकुश इच्छा पर निर्भर है, न ही कार्यकारणात्क प्रवृत्तियों से जनित हैं और न वे ऐतिहासिक संयोग से उत्पन्न हैं। आचार और व्यवहार के आदर्श प्रतिमान अन्ततः ऋत् में ही गोपित हैं जो मनुष्य के ह्रदय में प्रकाशित और शिष्ट परम्परा से सुनिश्चित होते हैं। इसीलिए 'ऋतम्भराप्रज्ञा' अर्थात् ऋत् को धारण करने

वाली, उसके साथ प्रचोदनात्मक सम्बन्ध में रहने वाली प्रज्ञा को मानव–बुद्धि का आदर्श माना गया है (धीयोयोनःप्रचोदयात्)। ऋग्वेद के सर्वाधिक निगुढ़ मंत्र 'गायत्री' का निहितार्थ भी यही है कि मनुष्य की बुद्धि ऋतानुगामी हो, ऋत् और मानवीय बुद्धि में प्रेरक–प्रेर्य भाव हो। इसी विश्वदृष्टि को ध्यान में रखते हुए आर्ष संस्कृति का जीवनादर्श 'देवो भूत्वा देवं यजेत्' के रूप में निरूपित हुआ है। मनुष्य द्वारा देवयजन का उद्देश्य देव बनना है, क्योंकि देवता ऋत् का उल्लंघन नहीं करते, जबकि साधारण चेतना के धरातल पर मनुष्य ऋत् का उल्लंघन भी करता है। अनेकों वैदिक ऋचाओं में ऋत् के उल्लंघन से उत्पन्न पाप के लिए वरुण देव से क्षमा–याचना करते हुए मनुष्य को देखा जा सकता है।

भारतीय ज्ञान–परम्परा की विश्वदृष्टि में मनुष्य को सृष्टि का स्वामी नहीं अपितु न्यासी माना जाता। मनुष्य भी चराचर में तमाम जीवित प्राणियों के बीच महज एक प्राणी ही है। इसलिए यह मानव–केन्द्रित (एन्थ्रोपोसेन्ट्रिक) नहीं अपितु चराचर–संवेदी विश्वदृष्टि है। इस विश्वदृष्टि में मनुष्य की अवधारणा 'प्रकृतिजयी' रूप में अवधारित न होकर 'आत्मजयी' रूप में साकार हुई है। इसके विपरीत यूरोपीय विश्वदृष्टि में बाईबिल (गौड हैज क्रियेटिड मैन इन इट्स मिनी इमेज टू रूल ओवर अर्थ...) से लेकर विज्ञान (प्रकृतिजयी मनुष्य) तक मनुष्य के स्वामीवादी वर्चस्व को बनाए रखा गया है। यही वह अन्तर है जिसके चलते इतिहास की भारतीय दृष्टि मानव और मानवीय अतीत की अवधारणा के घेरे में बन्धी नहीं रह जाती, बल्कि समस्त चराचर के अतीत से जुड़ जाती है। यह सार्वभौमिक संलग्नता की विश्वदृष्टि है। आश्चर्य है कि यूरोप द्वारा विकसित विज्ञान जो माइण्ड एण्ड मैटर, मनुष्य और प्रकृति के अन्तहीन द्वैत पर आधारित है और यूरोप जिसे अपने गौरव की ललाभूत उपलब्धि मानता है, वह आज तक इस विशाल, जीवन्त और रहस्यपूर्ण मानवेतर संसार से 'आत्मीय सम्प्रेषण' की भाषा खोजने में असफल रही है। वस्तुतः मानवीय संसार का मानवेतर संसार से अलगाव–दुराव यूरोपीय सभ्यता का सबसे त्रासद आयाम रहा है, जिसने गोएटे को यह कहने के लिए विवश किया कि हर अलगाव–दुराव में विक्षिप्तता के बीज होते हैं और हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि उसे पनपने न दिया जाए। इस अलगाव–दुराव से यूरोपीय आत्मा की लहू–लुहान विक्षप्तता ही होल्डरीन और रिल्के की काव्य और कलाकृतियों में दिखाई पड़ती है।

इसके विपरीत भारतीय जीवन–दृष्टि को इस अलगाव–दुराव का सामना इसलिए नहीं करना पड़ा कि उसने मानवेतर संसार से कभी अपने मिथकीय सम्बन्धों को त्यागा नहीं। सचमुच उस जीवन–दृष्टि के लिए इस अलगाव–दुराव पर विश्वास करना ही मुश्किल है जिसमें जीवन के एक रूप से दूसरे रूप के बीच पुनर्जन्मों और कायान्तरों की एक अटूट श्रृंखला है और जहाँ हर जीव के भीतर दूसरे के रहस्योद्घाटन की कुंजी छिपी हुई है। भारतीय दर्शन, धर्म और नीति इत्यादि के द्वारा मनुष्य और प्रकृति, मानवीय और मानवेतर संसार के बीच के सम्बन्धों के रहस्यों को खोलने के बहुविध प्रयास किए एक हैं। 'देवो भूत्वा देवं यजेत्' से लेकर 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' के आदर्श में यही भाव गहरे में प्रतिध्वनित होता है। प्रत्येक भारतीय के लिए अपने

जीवन में ऋणत्रय (पितृ–ऋण, ऋषि–ऋण और देव–ऋण) को चुकाना और प्रतिदिन पंच महायज्ञों (भूतयज्ञ, नृयज्ञ, पितृयज्ञ, देवयज्ञ और ब्रह्मयज्ञ) का कर्त्तव्य विधान मानवीय संसार और मानवेतर संसार के मध्य आत्मीय सम्बन्ध बनाए रखने का ही विधान है। इस भारतीय दृष्टि का निचोड़ प्रस्तुत करते हुए उचित ही कहा गया है कि ''प्रकृति रहस्यपूर्ण है, जैसा कि हर अन्य सत्ता होती है, लेकिन उससे आतंकित होने का कोई कारण नहीं, क्योंकि वह मनुष्य का एक अंश भी है – मानवीय प्रकृति, उसका स्व–स्वभाव।'' वास्तव में देखा जाए तो यूरोप ने सर्वप्रथम प्रकृति को ही 'अन्य' के रूप में देखा है और इसी कारण वहाँ एक ऐसे विज्ञान का विकास हुआ जिसका लक्ष्य प्रकृति को समझना नहीं, बल्कि प्रकृति को इस तरह समझना है ताकि उसे मनुष्य की देह–वासना के हित में बदला जा सके। अन्यथा प्रकृति की आत्मीय समझ के आधार पर किसी भिन्न प्रकार के विज्ञान की भी कल्पना की जा सकती है। ऐतरेय उपनिषद् में मनुष्य और प्रकृति, बाह्य और आन्तर की स्वभावगत एकता को ही तो यह कहते हुए प्रतिध्वनित किया गया है कि –

अग्निर्वाग भूत्वा मुखं प्राविशत्। वायुः प्राणोभूत्वा नासिके प्राविशत्।
आदित्यश्चक्षुषी भूत्वाक्षिणी प्रविशत्। दिशः श्रोतं भूत्वा कर्णौ प्राविशत्।
औषधिवनस्पतयो भूत्वा त्वचं प्राविशन्। चन्द्रमा मनोभूत्वा हृदयं प्राविशत्।
मृत्युरपानो भूत्वा नाभिं प्राविशत्। आपो रेतोभूत्वा शिश्नं प्राविशत्।

भागवत पुराण में भी इस चराचर सृष्टि के अविरोध को उद्घाटित करते हुए कहा गया है कि– **अहस्तानि सहस्तानां अपदानि च चतुष्पदां, फल्गुनि तत्र महतां, जीवो जीवस्य जीवनम्।**

लेविस्त्रट्रास ने भारतीय परम्परा के ऐसे ही मिथकीय स्रोतों को पूर्वी संस्कृतियों के सम्पर्क सूत्र (एंकर प्वायंट्स ऑफ इर्स्टर्न कल्चर) कहा है। इसे पश्चिमी मन का अहंकार कहा जाए या दम्भ कि वह पौर्वात्य अनुभव के सहयोग से अपने परिष्कार के लिए कभी तैयार नहीं होता। स्वामी विवेकानन्द ने भारतीय और यूरोपीय सभ्यता की तुलना करते हुए उचित ही कहा है कि एशिया की सम्पूर्ण सभ्यता का विकास प्रथमतः बड़ी निदियों के समीप के मैदानों और उपजाऊ भूमियों में – गंगा यांगसीकियांग और यूफ्रेटिज नदियों के कछारों में हुआ। इन सभ्यताओं का मूल आधार कृषिकर्म ही है, और इन सब में दैवी प्रकृति की प्रधानता है। एतद्विपरीत, अधिकांश यूरोपीय सभ्यता का उद्भव पर्वत–प्रदेशों या समुद्र–तटों में हुआ है। जल और स्थल में लूटमार ही इस सभ्यता का आधार है, उसमें आसुरी प्रकृति की प्रधानता है। अतएव यूरोपीय सभ्यता की तुलना उस वस्त्रखण्ड से की जा सकती है, जो इन उपादानों से बना है – उसे बुनने का 'करघा' समुद्रतट का विस्तृत समशीतोष्ण पहाड़ी प्रदेश है; उसकी 'रुई' विभिन्न जातियों की वर्णसंकरता से उत्पन्न प्रबल युद्धप्रिय जाति है; उसका 'ताना' अपने शरीर और अपने धर्म की रक्षा के लिए लड़ा जाने वाला युद्ध है... और उसका 'बाना' वाणिज्य है। उस सभ्यता का साधन तलवार है; उसके सहायक – साहस और शक्ति; और उसका

उद्देश्य ऐहिक और पारलौकिक सुखोपभोग है। इसके विपरीत आर्य–सभ्यता रूपी वस्त्र का 'करघा' विस्तृत गरम, समधरातल प्रदेश है, जिसमें स्थान–स्थान पर चौड़ी, जहाज चलने लायक निदियाँ प्रवाहित हो रही हैं। इस वस्त्र की 'रुई' है अतिसभ्य, अर्द्धसभ्य और जंगली जातियाँ, जिनमें अधिकांश आर्य हैं। उसका 'ताना' है वर्णाश्रम–धर्म और उसका 'बाना' है प्रकृतिगत कलह और प्रतियोगिता पर विजय–प्राप्ति। यूरोपीय निवासियों का उद्देश्य है अपने जीने के लिए अन्य सबका अन्त कर देना, और आर्यों का उद्देश्य है सभी को ऊपर उठाकर अपने समकक्ष बनाना; यही नहीं; बल्कि अपने से भी ऊँचे स्तर पर पहुँचाना।

उपसंहार :

इस प्रकार भारतीय ज्ञान–परम्परा और उसकी समवेत विश्वदृष्टि की संक्षिप्त रूपरेखा का उपसंहार करते हुए कहा जा सकता है कि भारतीय ज्ञान–परम्परा का विनियोग एक ऐसी सभ्यता और संस्कृति में हुआ है जिसके लिए उन सभी मानव प्रवृत्तियों (ईर्ष्या, द्वेष, काम, क्रोध, लोभ, मान, मोह और मद–मत्सरादि) से भी मुक्तिकाम्य है जिन्हें आधुनिक सभ्यता और सामजिक डार्विनवाद न्यूनाधिक रूप से मानव–स्वभाव अथवा मनुष्य का सत्य समझती है। आधुनिक सभ्यता जो आज विश्वसभ्यता का रूप धारण करती जा रही है वह मानव–सत्य के ऐसे ही दृष्टिकोण पर टिकी हुई दुनिया की तमाम सभ्यताओं में अग्रगण्य है तथा भारतीय सभ्यता और संस्कृति आज इसी 'ऐन्द्रिक सभ्यता' की ज्ञानमीमांसा को अपने ऊपर उत्तरोत्तर आरोपित करती जा रही है। इसके बावजूद भी भारतीय ज्ञान–परम्परा की दीप्ति अभी भी पूरी तरह समाप्त नहीं हुई है और भारतीय संस्कृति की मूल्य चेतना से उसकी संलग्नता अभी भी प्राणवंत है। ऐसा भी नहीं कि इसके अभिव्यक्ति पक्ष में समय–समय पर विकार उत्पन्न न हुए हों, जैसा कि किसी भी ज्ञान–परम्परा के गतिशील जीवन में स्वाभाविक ही होता है। परन्तु भारतीय ज्ञान–परम्परा में अपने विकारों के परिमार्जन की आत्मचेतना सदैव प्रज्वलित रही है। अपने अभिव्यक्ति पक्ष में आक्षिप्त हुए विकारों को अपना स्वरूप समझने की भूल भारतीय ज्ञान–परम्परा ने कभी नहीं की है। मूलगामी रूप से भारतीय ज्ञान–परम्परा का जिस सभ्यता और संस्कृति में विनियोग हुआ है और जिसे हम भारतीय सभ्यता और संस्कृति कहते हैं उसका भौगोलिक परिक्षेत्र भोग–भूमि नहीं अपितु योग–भूमि है। वह सभ्यता ज्ञानकेन्द्रित है, संस्कृति मूल्याधारित है, समाज धर्म केन्द्रित/कर्त्तव्य केन्द्रित है और वह समवेत रूप से चैतन्य की एकात्मता से आपूरित है।

वरिष्ठ प्राध्यापक
दर्शनशास्त्र विभाग
डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय
सागर (म.प्र.)

भारतीय ज्ञान-परम्परा एवं हिन्दी

– डॉ० अजय कुमार पटनायक

विश्वभर में सर्वप्रथम ज्ञान की किरणें हिमालय की कन्दराओं से प्रकाशित हुईं, जिन्हें संसार वेद के रूप में जानता है, मानता है। इन वेदमन्त्रों को ब्रह्मा–मुख–निःसृत माना गया है। मनु, याज्ञवल्क, कणाद, कपित, जैमिनी, व्यास आदि प्राचीन ऋषिगण तथा शंकर, दयानन्द, अरविन्द, विवेकानंद आदि आधुनिक युग के आचार्यों ने भी वेद को सृष्टि के आदिकाल से ईश्वरप्रदत्त ज्ञान के रूप में ग्रहण किया है। पतञ्जलि के शब्दों में परमात्मा तमाम गुरुओं के गुरु हैं–प्रथम गुरु।

ऋषय: मन्त्र द्रष्टार:। सत्यद्रष्टा ऋषियों ने इन मन्त्रों का अवलोकन किया था और उनका अर्थानुसन्धान भी किया था। निरुक्त के अनुसार, अपने तप बल से वे नित्यज्ञान वेद–दर्शन करने के कारण ऋषि हुए। ज्ञान की दृष्टि से वेद एक होने पर भी विषय की दृष्टि से वेदचतुष्टय के रूप में विश्वविदित है। ऋग्वेद में ज्ञान, यजुर्वेद में कर्म, सामवेद में उपासना और अथर्ववेद में विज्ञान प्रमुख विषय है।

अध्यात्म विद्या में ज्ञान का अर्थ है–आत्मज्ञान। अत: आत्मज्ञान को ही ज्ञान तथा शेष सभी को विज्ञान, यानी जानने लायक बाह्य सूचना मात्र माना गया है। यह चैतन्य ही सारी सृष्टि का आधारभूत मूल तत्त्व है, जो समस्त जड़ और चेतन में परिव्याप्त है। इस व्यष्टि चेतना को 'आत्मा' एवं समष्टि चेतना को 'ब्रह्म' कहा गया है। दोनों एक ही तत्त्व हैं। आत्मा का ज्ञान ही परमात्मा का ज्ञान है। आत्मा से परमात्मा (ब्रह्म) भिन्न नहीं हैं। इस आत्म–तत्त्व को जान लेने पर शेष सबकुछ ज्ञात हो जाता है। उपनिषद् कहता है, ''यस्मिन विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञात भवति'', अर्थात् जिसे जानने पर सम्पूर्ण सृष्टि का रहस्य ज्ञात हो जाता है। मनुष्य शरीर, मन, बुद्धि, अहंकार आदि कुछ भी नहीं है, उसका वास्तविक स्वरूप है आत्मा। आत्मा ही नित्य, शाश्वत और सनातन है। प्रकृति अनित्य है। अज्ञानी स्थूल, इन्द्रिय–ग्राह्य प्रकृति को पहचानता है और ज्ञानी सूक्ष्म, इन्द्रियातीत चेतना को जान लेता है। सृष्टि के आधार को जान लेने पर समग्र विश्वप्रपञ्च के बारे में ज्ञान हो जाता है, जिसमें भ्रान्ति दूर हो जाती है, संसार–बन्धन से मुक्त होकर वह स्वतन्त्र हो जाता है। ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं हो सकती। जीवन का चरमोत्कर्ष है मुक्ति, यह जीव की अन्तिम परिणति, अन्तिम स्थिति और चरम विकास है।

वेद कर्मप्रधान है। भगवान् ने स्वयं 'श्रीमद्भागवतगीता' में कहा है– 'त्रैगुण्य विषया वेदा:।' इसमें यागयज्ञ, मन्त्र–तन्त्र आदि विविध कर्म की बातें बतायी गयी हैं। इन सब मार्गों में चलकर धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष नामक चतुर्वर्ग फल की प्राप्ति होगी। उपनिषद् ज्ञान–मार्ग है।

लेकिन ''क्षुरस्य धारा: निश्चिता दुरत्यया, दुर्गपथ: तत् कवया वदन्ति।'' अर्थात् यह दुर्गम पथ है, क्षुरधार सदृश अत्यन्त तीक्ष्ण। अत: यह सिर्फ विद्वानों के लिए उद्दिष्ट है। इस दृष्टि से भागवत– जैसा प्रेम प्रधान भक्ति–ग्रन्थ आम जनता के लिए सहज, सरल एवं भावगर्भक है। इसमें भगवान् स्वयं भगवत् प्राप्ति की बात कर रहे हैं, जिसे अज्ञ तथा अज्ञानी मनुष्य भी आत्मस्वरूप की उपलब्धि कर सकता है।

संसार में मानव भौतिक सुख, विद्या, अर्थ और यश सबकुछ प्राप्त कर सकता है, पर अपने को अर्थात् आत्मस्वरूप को प्राप्त करना उसके लिए सहज नहीं है। इसलिए भगवान् ने आत्मस्वरूप या भगवत् प्राप्ति के लिए जो मार्ग सुझाया है, वह है भागवत धर्म। इस मार्ग में जाना चाहें, तो आपको अपने सारे कर्म भगवान् को अर्पण करना होगा। यह आत्मसमर्पण भाव ही भागवत तत्त्व का बीज है। अभिज्ञान एवं अहंकार इस समर्पण भाव के विरोधी हैं। विश्वसृष्टि के लिए भगवान् ने अपने नाभि–कमल से ब्रह्मा की सृष्टि की। भगवान् के नाभि–कमल में से ब्रह्मा ने देखा कि प्रलय–जल सारे संसार में लबालब भरा हुआ है। उनके मन में कौतूहल हुआ। वे कमल की जिस डण्डी पर बैठे हुए थे, उसका रहस्य भेद करने हेतु फिर से डण्डी के अन्दर घुस गये। वर्षों तक अन्दर रहकर छानबीन करने पर भी उसके आदि और अन्त का पता नहीं लगा पाये। फिर ऊपर उठकर भगवान् को अभेद और अनन्त मानकर अपने को उनके पास समर्पित कर दिया। तभी आकाशवाणी हुई 'तप–तप'। इसे भगवान् का निदेश मानकर उन्होंने दीर्घकाल तक तपस्या की। उसके पश्चात् भगवान् ने अपने तेजोमय रूप में ब्रह्मा को दर्शन देकर जो तत्त्व उपदेश दिया, उससे चतु:श्लोकी भागवत का उन्मेष हुआ। इससे ज्ञान प्राप्त कर ब्रह्मा ने विश्वसृजन का प्रयास किया। फिर भगवान् से प्राप्त इस ज्ञान के विस्तार हेतु उन्होंने अपने पुत्र नारद को सुनाया।

ब्रह्मा से सुने इस ज्ञान को नारद ने अपने शिष्य व्यासदेव के द्वारा विकसित करवाया। आज जो भागवत ग्रन्थ लोक में प्रसारित व आदृत है, वह व्यासदेव के पुत्र तथा शिष्य मुनि शुकदेव की मुखनि:सृत वाणी है, जो अठारह हजार श्लोकों में लिपिबद्ध है।

व्यासदेव ने वेदों का संकलन एवं विभागीकरण किया। तभी वे वेदव्यास कहलाये। उन्होंने ब्रह्मसूत्र की रचना की, महाभारत–जैसे विशाल ग्रन्थ का निर्माण किया, जिस महाभारत का एक अनमोल अंश है 'श्रीमद्भागवतगीता'।

वैदिक काल के बाद उसके स्वरूप–विस्तार हेतु ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, स्मृति शास्त्र, गृहसूत्र आदि अनेक रचनाओं के द्वारा वैदिक विचारधारा का प्रतिपादन किया गया। इसप्रकार वैदिक ज्ञान–परम्परा का प्रतिपादन करनेवाले साहित्य का कलेवर विशाल और विपुल हो गया। इसके दीर्घकाल बाद महाभारत का निर्माण हुआ। महाभारत कालीन योद्धाओं में अग्रगण्य अर्जुन वीरता और विद्वत्ता में अद्वितीय थे। लेकिन भाई–भाई के बीच, गुरु–शिष्य के बीच, पिता–पुत्र के बीच होनेवाले इस विनाशकारी युद्ध के परिणाम को सोचकर कर्म के सम्बन्ध

में संशय कर बैठे। तब भगवान् श्रीकृष्ण ने उसके सन्देह को मिटाने के बहाने गीता का ज्ञान उपदेश दिया था। इस सन्दर्भ में कहा गया है–

''सर्वोपनिषद: गाव: दोग्धा गोपालनन्दन: ।
पार्थ: वत्स: सुधिर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत् ।।''

अर्थात्, सारी उपनिषदें गायें हैं और अर्जुन वत्सा। गोपालनन्दन श्रीकृष्ण उन गायों को दुहनेवाले और सुधीजन इस अमृततुल्य दूध के भोक्ता हैं। अत: जो लोग सुधी नहीं, साधारण हैं, उन्हें शिक्षा देने हेतु जिस ग्रन्थ की आवश्यकता है, वह है श्रीमद्भागवत। आचार मीमांसा का प्रतिपादन करने के कारण ही गीता योगशास्त्र कहलायी। गीता के प्रत्येक अध्याय के अन्त में 'ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे' कहने का तात्पर्य है कि गीता का मुख्य विषय ब्रह्मविद्या पर प्रतिष्ठित व्यवहार का प्रतिपादन करना है। ब्रह्मतत्त्व के बारे में गीता में कहा गया है–

''सर्वेन्द्रियगुणभासं सर्वेन्द्रिय विवर्जितम् ।
असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुण भोक्तृ च ।।''

अर्थात्, ब्रह्म सब प्रकार के देहादिक सम्बन्धों से रहित होता हुआ भी सबको धारण करता है, निर्गुण होते हुए भी गुणों का भोक्ता है। वह सत् भी है, असत् भी और सद्सत् से परे भी है। सब प्राणियों के भीतर तथा बाहर भी वही है। वही चर, अचर, दूरस्थ और निकटस्थ भी है। वही जगत् का उत्पत्ति और प्रलयस्थान है, वह समग्र विश्व को आवृत्त करके स्थित है। इसप्रकार गीता ब्रह्म के सगुण तथा निर्गुण दोनों ही भावों की स्थापना करती है और दोनों में कोई तात्त्विक अन्तर नहीं। गीता ने ईश्वर में दो भावों की सत्ता मानी है, जिसे अपर भाव और पर भाव कहा गया है।

गीता के अनुसार प्रकृति और पुरुष इन दो तत्त्वों से भी परे एक तीसरा तत्त्व है, जो सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान, अव्यय और अमृत तत्त्व है, जिससे इस चराचर विश्व का उदय और लय होता है। प्रकृति और पुरुष तो उस व्यापक पुरुष की विभूति मात्र हैं। गीता में चैतन्यात्मक होने के कारण जीव को परमेश्वर की पराप्रकृति अथवा क्षेत्रज्ञ कहा गया है। किये गये कर्मों के फल को धारण करने के कारण शरीर को क्षेत्र और शरीर के ज्ञाता जीव को क्षेत्रज्ञ कहा गया है।

आत्मा के स्वरूप का निरूपण करते हुए गीता में कहा गया है कि आत्मा षड्विकारों से रहित और जन्म–मृत्यु से परे है। यह अजन्मा, नित्य और शाश्वत है। यह अविकार, अभेद्य, अदाह्य और अशोष्य है। यह नित्य, सर्वव्यापी, स्थिर, अचल और सनातन है।

गीता के अनुसार प्रकृति अक्षर ब्रह्म की निकृष्ट विभूति है। इसलिए गीता में अचल प्रकृति को 'क्षर' और अविकारी को अक्षर कहा गया है। इसके साथ ही अक्षर से भी उत्तम कोटि

पुरुषोत्तम की कही गयी है। यह पुरुषोत्तम तत्त्व गीता में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तत्त्व माना गया है, कहते हैं–

''अस्मात् क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तम ।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथित: पुरुषोत्तम: ।।''

जड़ जगत् से भिन्न चेतन ब्रह्म को या अव्यक्त प्रकृति से भी परे विद्यमान रहनेवाले सचेतन तत्त्व को अक्षर ब्रह्म कहते हैं। किन्तु जो ईश्वर इस विश्व को व्याप्त करता हुआ भी इससे परे है, जगत् के समस्त पदार्थों में स्थित रहते हुए भी उनसे पृथक् है, विश्वानुग होते हुए भी जो विश्वातीत है, वही पुरुषोत्तम है। इसी पुरुषोत्तम को सारे कर्म समर्पित करने की सलाह गीता हमें देती है। इस प्रकार गीता के अध्यात्म पक्ष में औपनिषद् का ब्रह्मवाद, सांख्य का प्रकृति–पुरुषवाद और भागवत धर्माभिमत ईश्वरवाद का सुन्दर समन्वय हुआ है।

इतिहास इस बात का गवाह है कि हजारों वर्षों की मानव–सभ्यता में जब भी धर्म की ग्लानि हुई है, उस समय भगवान् ने, मानव रूप में धरावतरण कर मानव–समाज को पतन से बचाया है। उसके बारे में स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है–

''यदा यदा ही धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत,
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहं ।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृतां,
धर्म संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ।।''

वास्तव में जब भी धरती पर धर्म की ग्लानि दिखाई देती है, तभी पुन: धर्म की संस्थापना और अधर्म के विनाश हेतु, साधुता के विकास एवं दुष्कृति के विलोप हेतु स्वयं भगवान् किसी–न–किसी रूप में धरा धाम पर अवतीर्ण होते हैं।

ऐसे ही श्रीकृष्ण के बाद एक लम्बे अरसे तक समाज में फैली अराजकता से जनता जब 'त्राहि–त्राहि' मचा रही थी, ई॰पू॰ 448 को गौतम का आविर्भाव हुआ। बुद्धत्व प्राप्ति के बाद उन्होंने जन–कल्याण में अपने सारे उपदेश मौखिक ही दिये। बाद में उन्हें सुत्तपिटक, विनय पिटक और अभिधम्म पिटक के नाम से संकलित किया गया। कुल मिलाकर इन ग्रन्थों में इस क्लेश बहुल संसार में प्राणियों को राहत दिलाने के लिए सरल आचार–मार्ग की स्थापना करना बुद्ध का उद्देश्य था। आध्यात्मिक चिन्तन–मनन में उलझे बिना सीधे–सीधे मुद्दे पर आना चाहते थे वे।

गौतम बुद्ध के अनुसार, प्रथम आर्य सत्य है दु:ख। संसार में दु:ख की सत्ता इतनी सुदृढ़ है कि उसे नकारा नहीं जा सकता। द्वितीय आर्य सत्य है कारण, जिन्हें बुद्ध ने द्वादश निदान कहा है। वे हैं–जरामरण,जाति, भव, उपादान, तृष्णा, वेदना, स्पर्श, षडायतन, नाम रूप, विज्ञान,

संस्कार और अविद्या। ये सारे एक–दूसरे के प्रति कारण हैं। जैसे, जरामरण का कारण है जाति अथवा जन्म लेना। जन्म का कारण है पुनर्जन्म उत्पन्न करनेवाले कर्म। भव अर्थात् पुनर्जन्म होता है। उपादान अर्थात् आसक्ति, जो कई प्रकार की होती है–कामोपादान, शीलोपादान, आत्मोपादान आदि। आसक्ति उत्पन्न होती है तृष्णा या इच्छा से। इन्द्रियों द्वारा बाह्यार्थानुभव के बिना तृष्णा की उत्पत्ति नहीं हो सकती। अत: वेदना यानी इन्द्रियजन्य अनुभूति तृष्णा की जननी है। वेदना उत्पन्न होती है स्पर्श अर्थात् विषयेन्द्रिय के सम्पर्क से, जो स्वयं षडायतन पर निर्भर करता है। यह षडायतन नामरूप दृश्यमान शरीर तथा मन में संवलित संस्थान–विशेष का कर्म है। नामरूप की सत्ता विज्ञान, अर्थात् चैतन्य पर प्रतिष्ठित है। यह चैतन्य मातृगर्भ से भ्रूण के नामरूप का साधक है। यह विज्ञान संसार से उत्पन्न होता है, जो स्वयं अविद्या अज्ञान का कार्य है। इसप्रकार सारे दु:खों का मूलभूत कारण है अविद्या या अज्ञान। इन्हीं द्वादश निकाय के चक्र को बौद्ध लोग 'भवचक्र' कहते हैं। सापेक्षकारणतावाद का प्रतीत्य समुत्पाद ही बौद्ध धर्म का मौलिक सिद्धान्त है।

तृतीय आर्य सत्य है–दु:ख निरोध। कारण की सत्ता पर ही कार्य की सत्ता हुआ करती है। यदि कारण परम्परा रोक दी जाय, तो कार्य स्वत: ही अवरुद्ध हो जायगा। मूल कारण अविद्या का विद्या से निरोध करा दिये जाने पर दु:ख का निरोध अवश्य हो जायगा। चतुर्थ आर्यसत्य है दु:खनिरोधगामिनी प्रतिपद अर्थात् निर्वाण का मार्ग। बुद्ध ने सुख–समृद्धि से जीवन बितानेवाले सुखमार्गियों तथा कठोर व्रताचरण करनेवाले तापसों को छोड़कर सुख और दु:ख के बीच में मध्यम प्रतिपदा को खोज निकाला, जिन्हें आर्य अष्टांगिक मार्ग कहा जाता है। ये हैं–सम्यक् ज्ञान, संकल्प, वचन, कर्मान्त, आजीव, व्यायाम, स्मृति एवं समाधि।

इन अष्टांगिक मार्गों का पूर्णत: पालन करने पर प्रज्ञा का उदय होता है और निर्वाण की उपलब्धि होती है। उपर्युक्त आर्य सत्यों पर विचार करने से यह प्रतीत होता है कि बुद्ध का मार्ग उपनिषद् मार्ग से एकदम भिन्न नहीं है, क्योंकि उपनिषद् भी ''ऋते ज्ञानान्न मुक्ति'' कहकर ज्ञान की महिमा का सहस्त्र सुखेन प्रतिपादन करते हैं। यही सिद्धान्त बुद्ध को मान्य था। लेकिन उन्होंने ज्ञानोत्पत्ति के लिए शरीर की शुद्धि पर विशेष बल दिया है एवं साधन के रूप में शील, समाधि, प्रज्ञा जैसे 'त्रिरत्न' को अनिवार्य माना है।

महात्मा गौतम बुद्ध के पश्चात् बौद्ध धर्म में विश्रृंखला दिखाई देने लगी। महायान एवं हीनयान नाम के विभाजन के बाद क्रमश: बुद्ध संस्थापित बौद्ध धर्म पतन के कगार पर पहुँच गया। तान्त्रिक प्रभाव से इसमें भ्रष्टाचार का प्रवेश हुआ। भारताकाश में एक काला बादल छा गया जब धर्म, कर्म, ज्ञान एवं काण्ड को नष्ट करने का उद्यम हुआ। जिस समय लुप्तप्राय बौद्ध धर्म निरस तर्कमूलक निरीश्वर या शून्यवाद में परिणत होकर जनता का विरक्तिभाजन हुआ था, जिस समय ब्राह्मण समाज आचारभ्रष्ट होकर नाना प्रकार काल्पनिक धर्म का आश्रय लिए मद्य–मांस सेवन में निरत रहा, उसी समय धर्म संस्थापनार्थाय स्वयं भगवान् कैलासपति शंकराचार्य

के रूप में अवतीर्ण हुए थे, वेद, उपनिषद् और गीता के परम ज्ञाता शंकराचार्य ने उपनिषदों, ब्रह्मसूत्रों तथा गीता पर भाष्य लिखकर उपनिषदों के सिद्धान्त का प्रचार–प्रसार किया। हालाँकि सर्वप्रथम ऋग्वेद, फिर छान्दोग्य उपनिषद् में एक तथा अद्वितीय सत् को आत्मा से अभिन्न माना गया। तत्त्वमसि (वह तू है) उसका सिद्धान्त है। माण्डुक्य उपनिषद् में आत्मा को ब्रह्म माना गया। शंकर के परमगुरु गौड़पाद की माण्डुक्यकारिका में अद्वैतवाद का सर्वप्रथम न्यायसंगत वर्णन मिलता है। उनके पूर्व बौद्धग्रन्थों में मायावाद या विवर्त्तवाद की जो सुन्दर व्याख्या उपलब्ध थी, गौड़पाद जी ने उसका भी लाभ उठाकर अद्वैत वेदान्त को तर्कों पर आधारित किया। शंकराचार्य ने तो अद्वैतवाद का मुख्य प्रवर्त्तन किया। 'सर्व खल्विदं ब्रह्म', 'ब्रह्म सत्य जगन्मिथ्या' कहकर उन्होंने जीव, जगत् और ब्रह्म को एक और अभिन्न माना। चूँकि जीव और ब्रह्म के मिलन में माया अन्तराय है, उसे हटाने से ही ब्रह्म मिलन सम्भव होगा। शंकराचार्य ने न केवल भाष्य लिखे, बल्कि अद्वैत–विरोधियों से शास्त्रार्थ कर उन्हें पराजित भी किया।

अपने अद्वैतवाद के प्रचार–प्रसार के लिए शंकराचार्य ने बदरिकाश्रम, द्वारिकापुरी, गोवर्द्धन पीठ और श्रृंगेरी में चार मठ स्थापित किये, संन्यास परम्परा का जीवनोद्धार किया एवं दशनामी संप्रदाय की स्थापना की, जिसके अनुयायी तब से लेकर आज तक इस देश में अद्वैतवाद का प्रचार कर रहे हैं। अत: वास्तव में कहा गया है–

''सदाशिव समारम्भा शंकराचार्यम् मध्यमाम् ।
अस्मत् आचार्य पर्यन्ताम वन्दे गुरु परम्पराम् ।।''

अद्वैतवाद की इस परम्परा को आगे ले जाते हुए बीच में बौद्धों के साथ अद्वैत का विचार–युद्ध हुआ, जिसमें एक–दूसरे का खण्डन करते गये। आखिर बारहवीं शताब्दी में बौद्ध धर्म और दर्शन के भारत छोड़ चीन और तिब्बत चले जाने पर युद्ध शान्त हो गया। उनके निष्कासन का श्रेय काफी हद तक अद्वैत वेदान्त को दिया जाता है।

परवर्ती काल में अद्वैतवाद में ज्ञान की शुष्कता में थोड़ी–सी जान डाल देने के लिए भक्ति का सम्मिश्रण कर दिया गया। 'अहं ब्रह्मास्मि' के साथ ही 'अनुभवावसानत्वात् ब्रह्मज्ञानस्य' अर्थात् 'ज्ञान की अनुभूति ही भक्ति' कहकर उन्होंने साधना–पद्धति को दो मार्ग प्रदान किये–ज्ञान मार्ग और भक्ति मार्ग। अद्वैतवाद के प्रचार–प्रसार के साथ–साथ विचार–मन्थन भी जारी रहा। इसी परम्परा में तीन सौ साल बाद ग्यारहवीं सदी में विशिष्टाद्वैतवाद नामक एक और दर्शन लेकर रामानुजाचार्य आये, तो उनके सौ साल बाद बारहवीं सदी में द्वैताद्वैतवाद लेकर निम्बार्काचार्य, तेरहवीं सदी में द्वैतवाद लेकर मध्वाचार्य एवं चौदहवीं सदी में शुद्धाद्वैतवाद लेकर विष्णुस्वामी ने दर्शन के क्षेत्र को एक–एक अभिनव दृष्टि प्रदान की।

इसके बाद रामानुजाचार्य की शिष्य–परम्परा में चौदहवीं सदी में जहाँ रामानन्द ने पूरे देश में अद्वैतवाद को संप्रसारित करने का बीड़ा उठाया, वहाँ विष्णुस्वामी के शिष्य बल्लभाचार्य

ने शुद्धाद्वैतवाद के प्रचार का जिम्मा लिया। रामानन्द ने राम (विष्णु) के निर्गुण एवं सगुण रूपों को स्वीकृति दे दी। लेकिन बल्लभाचार्य ने कृष्ण (विष्णु) के सगुण रूप के विविध पक्षों का उद्‌घाटन किया। लोकरक्षक एवं लोकरंजक रूपों के जरिये लोकरक्षा के साथ-साथ मानवीय प्रेम की विभिन्न दिशाओं को उजागर किया। श्री चैतन्य ने भी उनका साथ दिया और पूरे देश में भक्ति और प्रेम की लहर पैदा कर दी।

हिन्दी का जहाँ तक प्रश्न है, विरासत के रूप में इसे वेद, उपनिषद्, बौद्ध, सिद्ध आदि से ज्ञान का विपुल भण्डार मिला था। इस विरासत से भिन्न हिन्दी-साहित्य की कल्पना नहीं की जा सकती। इतिहास इसका गवाह है कि हमारे यहाँ के सरहपाद, तिल्लोपाद जैसे सिद्ध साधकों ने भी अद्वैतवाद-जैसे महान् दर्शन को अपने ढंग से वाणी दी थी। फिर नाथपन्थियों ने भी लोकभाषा में निर्गुण ब्रह्म का ही बखान किया है। लेकिन उत्तर भारत में गुरु रामानन्द से अद्वैतवाद को आत्मस्थ कर कबीर-जैसे 'मसि कागद न छूनेवाले' भक्त ने बड़ी आसानी से इस ज्ञान को जन-जन तक पहुँचा दिया।

''तू ब्राह्मन मैं कासी का जुलाहा समुझो मोर गियाना'' कबीर की इस पंक्ति का 'गियाना' ही असली ज्ञान है-अद्वैतवाद। शंकर से रामानन्द के जरिये जो तत्त्व उन्हें मिला, उसे उन्होंने बड़ी ही सहज, सरल भाषा में साधारण जनता को यूँ समझा दिया-

''जल में कुम्भ है, कुम्भ में जल है बाहर-भीतर पानी ।
फूटा कुम्भ जल जलहिं समाना यह तत्त्व कहो गियानी ।।''

कुम्भ या घड़ा शरीर को कहते हैं। विस्तीर्ण जलाशय अगर परमात्मा है, तो कुम्भ के अन्दर का जल आत्मा का प्रतीक है। माया का प्रतीक कुम्भ अगर फूट गया, तो आत्मा और परमात्मा फिर से एकाकार हो जायँगे। माया का घड़ा फूट जाने से आत्मा पुन: परमात्मा में लीन हो जायगा।

कहा जाता है, अद्वैतवाद पर योग और बौद्ध विचारधारा का प्रभाव है। बौद्धों और उपनिषदों के बाहर जाने से अद्वैत ईरान अरब और मिस्र में गया था। यहाँ तक कि बंगाल के स्वामी रामकृष्ण परमहंस एवं स्वामी रामतीर्थ के ग्रन्थों में अद्वैत की प्रबल धारा बही। परमहंस के शिष्य स्वामी विवेकानन्द में उसकी पुनरुक्ति कर अमेरिका एवं यूरोप में प्रचार करके विदेशियों में इसे प्रतिष्ठा दिलायी। मुसलमानों के आने से सूफी मत का रूप धारण कर अद्वैतवादी दर्शन भारत में वापस आया। अत: भक्तिकाल के तमाम निर्गुणपन्थी सन्त एवं सूफियों की रचनाओं में तथा नानक देव के गुरुग्रन्थ साहिब में भी भारतीय ज्ञान-परम्परा के दर्शन होते हैं। सूफियों की रचनाओं में तो भारतीय एवं अभारतीय तत्त्वों का अद्‌भुत समन्वय दृष्टिगोचर होता है। जायसी के 'पद्मावत' के प्रारम्भ में तो परमात्मा एवं मुहम्मद का साथ-साथ वर्णन पाया जाता है।

वैदिक काल से चली आती हुई विष्णु भगवान् के सगुण एवं निर्गुण दोनों रूपों का उल्लेख है। इसी से आगे चलकर अवतारवाद की परिकल्पना हुई। शक्ति तथा सौन्दर्य समन्वित होकर राम और कृष्ण के जो दो अवतार हमारे सामने रखे गये, उन्हें भारतीय समाज ने अपना आदर्श माना और उनको लेकर विपुल साहित्य का सृजन हुआ। भक्तकवि तुलसीदास एवं सूरदास ने उनका ऐसा अद्भुत एवं रमणीय चित्र खींचा कि वह आज तक भारतीय साहित्य में आदरणीय बना हुआ है। तमाम भक्तिकाल में तो वे छाये रहे। बीच में रीतिकाल की दरबारी संस्कृति के चलते इनका नाम लिया भी गया, तो सम्मान के साथ नहीं। अपने विलास–व्यसन को वाणी देने हेतु राधा–कृष्ण के नाम का इस्तेमाल किया–

''आगे के सुकवि रीझि हैं तो कविताई, न तो
राधिका–कन्हाई सुमिरन को बहानो है ।।''

– भिखारीदास–काव्य निर्णय

हिन्दी–साहित्य का आधुनिक काल, जिसे ब्रिटिश काल भी कहा जाता है, एक प्रकार से संघर्ष और विद्रोह का काल था। लोकमान्य तिलक, रामकृष्ण परमहंस, रामतीर्थ, विवेकानन्द, लाला लजपतराय, योगी अरविन्द, रमण महर्षि, महात्मा गाँधी–जैसे आधुनिक भारत के निर्माताओं ने उपनिषदों और गीता पर आधारित सेवाधर्म ग्रहण किया। उनका लक्ष्य था पुन: जगत्गुरुत्व प्राप्त करने हेतु आजाद होना परम आवश्यक है।

प्रोफेसर लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय के शब्दों में ''गरीबों और गुलामों की न कोई संस्कृति होती है और न धर्म तथा दर्शन।'' इसी आक्रोश के साथ समाज–सुधार हो चाहे नारी अधिकार, हर जगह क्रान्ति की लहर दौड़ती नजर आयी। आजादी के महासमर में सारा देश शरीक था। फिर भी बीच–बीच में राष्ट्रभक्ति के साथ–साथ हमारे कवियों ने रामभक्ति एवं कृष्ण–प्रेम के भी किस्से सुनाये। मैथिलीशरण गुप्त के 'साकेत' एवं अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' के 'प्रियप्रवास' इसके बलिष्ठ उदाहरण है। गुप्त जी ने 'यशोधरा'–जैसा चम्पूकाव्य रचकर गौतम बुद्ध के एक अनालोचित प्रसंग का उद्घाटन किया था।

तैतीरीय उपनिषद् की कथा में से सूत्र खोजकर महाकवि जयशंकर प्रसाद ने मानवीय भावनाओं का इतिहास प्रस्तुत किया, 'कामायनी' महाकाव्य में, जो पूरे विश्व में बेजोड़ माना जाता है। महादेवी वर्मा पर बौद्ध–दर्शन का प्रभाव केवल उनकी लोकमंगल विधायिनी पीड़ा की स्वीकृति तक ही सीमित है, अन्यथा जहाँ तक सत्य के परमार्थिक स्वरूप का सम्बन्ध है, वे उपनिषद् की परम्परा को ही स्वीकार करती हैं। उन्होंने सर्ववादी दर्शन को अपनाया है, परिणामत: उनकी आध्यात्मिक–साधना और लोक–साधना में विरोध की गुंजाइश नहीं है। 'दीपक' महादेवी जी का प्रिय विम्ब है, जो आध्यात्मिक प्रतीक बनकर अपने प्रकाश से पथिक को मार्ग दर्शाता है। उनका 'अज्ञात प्रियतम' से भी निर्गुण ब्रह्म का संकेत मिलता है।

आगे चलकर धर्मवीर भारती का 'अन्धायुग' हो या 'कनुप्रिया' और कुँवर नारायण का 'आत्मजयी', इन्हें पुराणों से चुने गये विम्बों को नये अर्थ और आधुनिक सन्दर्भ में अभिव्यक्ति दी गयी है। 'कठोपनिषद्' के यम–नचिकेता प्रसंग से आधुनिक मानव की मूलभूत समस्या 'मानव जीवन की सार्थकता' का प्रश्न उठाया है, कुँवर नारायण ने। इसी प्रकार मिथक पर आधारित 'बाजश्रवा' में जीवन के प्रबल आकर्षण को स्पर्श करने की कोशिश की गयी है। कवि के शब्दों में, ''यदि 'आत्मजयी' में मृत्यु की ओर से जीवन को देखा गया है तो 'मानवता के बहाने' में जीवन की ओर से मृत्यु को देखने की एक कोशिश है।''

हिन्दी के गद्य साहित्य में भारतीय दर्शन एवं संस्कृति के दर्शन होते है। विशेषकर चतुरसेन शास्त्री, हजारीप्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में भारतीय इतिहास के साथ–साथ वेद, पुराण, दर्शन, ब्राह्मण ग्रन्थों का मन्थन कर उनमें मानवीय संवेदनाओं का संचार किया गया है। द्विवेदी जी एवं विद्यानिवास मिश्र जो अपने ललित निबन्धों में भी इतिहास, पुराण तथा प्राचीन साहित्य से गम्भीर–से–गम्भीर तथ्य उठाते हुए उन्हें समसामयिकता से जोड़ देते हैं।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि न केवल हिन्दी, बल्कि समूचे भारतीय साहित्य को आज ही नहीं, अगले सैंकड़ों वर्षो तक भारतीय ज्ञान–परम्परा से पृथक नहीं किया जा सकता, भले ही पश्चिमी ज्ञान–विज्ञान–दर्शन आदि की कितनी ही घुसपैठ क्यों न हो।

प्लॉट नं. 1032/2402
प्रगतिनगर, यूनिट–8
भुवनेश्वर (ओड़िशा)

**राष्ट्रीय व्यवहार में
हिन्दी को काम में लाना
देश की शीघ्र उन्नति के लिए
आवश्यक है।**

– महात्मा गांधी

नई शिक्षा नीति-2020 के क्रियान्वयन में स्थानीय निकायों की भूमिका

– प्रो. बी. के. श्रीवास्तव[1]
डॉ. ब्रजेन्द्र कुमार[2]

शिक्षा मानवीय जीवन का एक ऐसा पहलू है जो उसे परिष्कृत करके उसके प्राकृतिक स्वरूप को मानवीय स्वरूप में स्थापित करता है। शिक्षा मानवीय मस्तिष्क एवं व्यवहार को व्यापक आधार प्रदान करने में एक निर्माणात्मक प्रक्रिया के रूप में कार्य करती है। दुनिया की सभी सभ्यताओं में मानव ने अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु जो प्रयोग किए, उन अनुभवों को उसने संरक्षित और स्थानान्तरित करके अपनी पीढ़ियों को सुपुर्द किया। जिस संस्कृति में इन अनुभवों के संरक्षण एवं स्थानान्तरण का आधार व्यापक था, उस संस्कृति को अपना विस्तार करने में उतनी ही अधिक सफलता भी मिली। किसी न किसी रूप में इस बात की आवश्यकता एवं महत्ता आज भारतीय समाज में भी महसूस की जा रही है। इसीलिए वर्तमान परिप्रेक्ष्य को दृष्टिगत रखते हुए 'नई शिक्षा नीति–2020' को व्यापक आधार प्रदान कर शिक्षा व्यवस्था के लिए भावी ढाँचा तैयार किया जा रहा है। 'नई शिक्षा नीति–2020' भारत को 21वीं सदी में शिक्षा व्यवस्था को दिशा प्रदान करने में मार्गदर्शक की भूमिका के रूप में देखी जा रही है। भारत में शैक्षिक प्रगति की चिंता कुछ समय से बड़ा मुद्दा बना हुआ है और इस चिंता का जो बड़ा कारण देखा जा सकता है, वो है पूँजी के द्वारा शिक्षा का परिवर्तित रूप, जो रोजगारोन्मुखी होता जा रहा है। शिक्षा का रोजगार से जुड़ना व्यक्ति के जीवन को सम्मानजनक जीने का आधार बन गया है। इसलिए शिक्षा का स्वरूप स्थानीय स्तर का होना चाहिए ताकि उसे अपनाने और उसके विकास में स्थानीय स्तर पर लोग अपनी रूचि प्रकट कर उसके साथ सहभागिता कर सकें।

भारत में शिक्षा का प्रबन्धन स्थानीय निकायों के साथ प्राचीन काल से ही जुड़ा हुआ है। प्राचीन काल में शिक्षा व्यवस्था का सुचारू संचालन सामाजिक सहकारिता के आधार पर आत्मनिर्भर रूप से चलता था। धीरे–धीरे राज्य ने अपनी भूमिका बढ़ानी शुरु की, लेकिन आम–जन की शिक्षा स्थानीय संस्थाओं और संसाधनों पर ही निर्भर रही। भारत में संगठित स्थानीय संस्थाओं का उदाहरण गुप्तकाल से ही मिलने लगता है। जिसमें समय के साथ विभिन्न प्रकार के परिर्वतन आते जाते हैं और शिक्षा व्यवस्था के स्वरूप को बदलाव मिलता जाता है। इसी प्रकार से देश में बदलती हुई राजनीतिक संरचनाओं से स्थानीय स्तर की संस्थाओं को हम बदलता हुआ पाते हैं। आज के समाज में स्थानीय स्तर पर कार्य करने वाली संस्थाओं को हम दो रूप में देख सकते हैं। एक नगरीय स्थानीय निकाय और दूसरे ग्रामीण स्थानीय निकाय। इन दोनों के ही द्वारा अपने–अपने क्षेत्र में विभिन्न प्रकार का कार्य करना पड़ता है, जिनमें शिक्षा भी एक प्रमुख कार्य है। इस स्थिति में यह समझना बहुत महत्त्वपूर्ण हो

जाता है कि इतनी महत्त्व की संस्था का शिक्षा के विकास में भूमिका को समाज और राज्य के द्वारा किस रूप में लिया जा रहा है?

शिक्षा का स्थानीय परिवेश और संसाधनों से विशेष संबंध है। शिक्षा स्थानीय परिवेश को और स्थानीय परिवेश शिक्षा को गहराई से प्रभावित करते हैं। इसीलिए शिक्षा का विकास स्थानीय आवश्यकताओं और प्रबंधन पर निर्भर करता है। आधुनिक शब्दावली में स्थानीय निकाय स्थानीय सरकार का वह अंग होते हैं, जिसमें प्रायः स्थानीय लोगों द्वारा स्थानीय हितों की सिद्धि के लिए प्रयास किए जाते हैं। स्थानीय निकायों को कुछ इस प्रकार से परिभाषित किया गया है कि ''स्थानीय निकाय स्वतंत्र निर्वाचन द्वारा गठित होते हैं और राष्ट्रीय सरकार की सर्वोच्चता के अधीन रहकर ही कुछ मात्रा में शक्ति, स्वेच्छा एवं उत्तरदायित्व का उपभोग करते हैं। ऐसा करते समय उनकी निर्णय शक्ति पर उच्च सत्ता का नियंत्रण नहीं रहता है।''[1] स्थानीय निकाय जिनका विकास मुख्य रूप से स्थानीय स्तर पर उपलब्ध संसाधनों का संरक्षण करने और समस्याओं को सुलझाने में उन संसाधनों का उपयोग करने के लिए किया जाता है, इसलिए वे कई मायने में महत्त्वपूर्ण हो जाते हैं। औपनिवेशिक भारत में आधुनिक रूप में स्थानीय निकायों का विकास तब शुरू होता है, जब 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में ब्रिटिश सरकार द्वारा इसके लिए प्रयास किए जाने लगे थे। ब्रिटिश काल में गाँव एवं नगर दोनों स्तर पर स्थानीय निकायों को स्थापित किया जाने लगा था। जो वित्तीय विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया का एक महत्त्वपूर्ण अंग था। इसे लार्ड रिपन ने 18 मई, 1882 ई. के अपने प्रस्ताव में राजनैतिक प्रशिक्षण को स्थानीय सरकार का मुख्य कार्य मानते हुए आगे बढ़ाया है। इसके लिए नगरपालिका की तरह गाँवों में भी ग्रामीण मण्डल बनाये जाने लगे थे। 1907 ई. में 'विकेन्द्रीकरण पर शाही आयोग' की अपनी रिपोर्ट में प्राइमरी शिक्षा का उत्तरदायित्व नगरपालिकाओं को सौंपने एवं बजट होने पर माध्यमिक शिक्षा पर भी खर्च करने की बात कही गई।[2] 16 मई, 1918 ई. को भारत सरकार ने एक प्रस्ताव में स्थानीय निकायों को बजट बनाने, कर लगाने तथा कार्यों को स्वीकृत करने की स्वतंत्रता को स्वीकार करने पर बल दिया। 1919 ई. के भारत सरकार अधिनियम द्वारा प्रान्तों में द्वैध शासन की स्थापना के समय स्थानीय स्वशासन एवं शिक्षा को हस्तान्तरित विषयों में रख दिया गया था[3] और जब इनसे कई प्रकार की समस्याओं को हल करने में मदद नहीं मिली तो 1935 ई. के भारत सरकार अधिनियम में स्थानीय संस्थाओं को अधिक कार्यभार दे दिया गया। परन्तु उनकी कर लगाने की शक्तियाँ कुछ कम कर दी गई।[4] इस प्रकार से धीरे-धीरे औपनिवेशिक सत्ता ने प्रशासन में भारतीयों की सहभागिता बढ़ा कर अपना उत्तरदायित्व कम से कम कर दिया ताकि भारतीय अपनी सहभागिता मान कर अंग्रेजी सरकार का समर्थन करते रहें।

राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान गाँधीजी ने स्वतंत्र भारत के निर्माण की रूपरेखा में गाँव को केन्द्र माना था। उनका मानना था कि ''आजादी नीचे से शुरू होनी चाहिए। हर एक गांव में पंचायत का राज हो। उसके पास पूरी सत्ता और ताकत हो। इसका मतलब यह है कि हर एक गांव को अपने पांव पर खड़ा होना होगा, अपनी जरूरतें खुद पूरी कर लेनी होगीं ताकि वह अपना

सारा कारोबार खुद चला सकें।''[5] गाँधीजी के स्वप्न को आधार बनाते हुए संविधान सभा में तीखी बहस के बाद 'अनुच्छेद–40' के रूप में नीति–निर्देशक सिद्धांतों में सुनिश्चित कर दिया था कि स्थानीय निकायों का विषय राज्यों के अधिकार क्षेत्र में रहेगा। 1950 ई. में संविधान के लागू होने के साथ–साथ स्थानीय स्वशासन को 'ग्रासरूट डेमोक्रेसी' के रूप में देखा गया। 2 अक्टूबर, 1952 ई. को 'सामुदायिक विकास कार्यक्रम' में एक कार्यकलाप शिक्षा पर भी रखा गया था। जिसमें प्राथमिक स्तर पर अनिवार्य तथा निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था, उच्च तथा माध्यमिक विद्यालयों की व्यवस्था तथा सामाजिक तथा पुस्तकालय सेवाओं की व्यवस्था शामिल की गई थी। 1957 ई. में बलवंत राय मेहता की अध्यक्षता में गठित समिति ने भारत में 'पंचायती राज' के नाम से ग्रामीण स्थानीय प्रशासन की त्रिस्तरीय पद्धति की सिफारिश की थी। पंचायती राज को अशोक मेहता समिति, प्रो. जी.के.वी. राव समिति, एल.एम. सिंघवी समिति, पी.के. थुंगन समिति से होते हुए संविधान के 73वाँ संशोधन अधिनियम, 1992 के रूप में अंतिम रूप मिला।[6] 73वें संविधान संशोधन द्वारा संविधान में भाग–9 जोड़ा गया तथा इसमें अनुच्छेद–243 से 243–ण तक के अनुच्छेद स्थापित किए गए। भाग–9 में तीन स्तरीय पंचायतों– ग्राम पंचायत, पंचायत समिति तथा जिला पंचायत बनाने की व्यवस्था की गई है और पंचायतों के विकास के लिए 11वीं अनुसूची में 29 विषय प्रदान किए गए हैं। जिनमें प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालयों की शिक्षा, तकनीकी प्रशिक्षण व्यावसायिक शिक्षा, प्रौढ़ और अनौपचारिक शिक्षा, पुस्तकालय तथा सांस्कृतिक क्रियाकलाप शामिल हैं।[7] इस प्रकार से देखा जाए तो ग्रामीण स्तर पर विकास और लोकतंत्र की पहुँच इस संशोधन के द्वारा सुनिश्चित की गई है। पंचायती राज संस्थान को राज्यों का विषय बनाया गया ताकि राज्य अपने स्तर पर उनका मार्गदर्शन कर उन्हें शक्ति और संसाधन उपलब्ध करा कर मजबूती प्रदान करें।

भारत सरकार ने 2018 में 'राष्ट्रीय ग्राम स्वराज अभियान' के द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियों एवं अन्य हितधारकों को प्रशिक्षित करना शुरू किया।[8] हाल ही में केन्द्रीय सरकार द्वारा 'सबकी योजना सबका विकास' अभियान के तहत् संविधान की 11वीं अनुसूची में स्थापित 29 विषयों के विकास के लिए मार्ग प्रशस्त किया है। इन विषयों में शिक्षा भी एक महत्त्वूर्ण विषय है। शिक्षा जैसे विषय को समाज के नागरिकों एवं गैर–सरकारी संगठनों के माध्यम से विद्यालयों के लिए योजनायें तैयार करवा कर विद्यालयों की समस्याओं को दूर किया जा सकता है।[9] इसके अलावा इस तरह की योजनाओं के निर्माण में समाज, सरकार तथा गैर–सरकारी संगठनों की भागीदारी बढ़ाकर गुणवत्तापूर्ण शिक्षा स्थापित करने की दिशा में बढ़ा जा सकता है और सरकारी तथा निजी दोनों प्रकार के स्थानीय विद्यालयों के प्रति स्थानीय लोगों में विश्वास की बहाली की जा सकती है। आज जिस प्रकार से स्थानीय स्तर से शिक्षा, स्वास्थ्य, पेयजल, बाजार या अन्य प्रकार की अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए गामीण क्षेत्रों से नगरीय क्षेत्रों की ओर लोगों का पलायन हो रहा है। उससे नगरीय क्षेत्रों पर दबाव दिन पर दिन बढ़ता जा रहा है। ग्रामीण क्षेत्रों से नगरीय क्षेत्रों में प्रवजन के लिए शिक्षा भी एक महत्त्वपूर्ण मुद्दा है। इसलिए अगर नई शिक्षा नीति

में स्थानीय स्तर पर शिक्षा की गुणवत्ता को विश्वसनीय बनाया जाए तो, इस प्रकार के प्रवजन को रोकने में बड़ी मदद मिल सकती है तथा कम संसाधनों की उपलब्धता में ही वहाँ के लोगों का जीवन स्तर ठीक किया जा सकता है।

भारत सरकार द्वारा पंचायत राज संस्थान को सशक्त बनाने के लिए ग्राम सभा की सालाना बैठकों की संख्या 1 से 6 तक निश्चित की गई है। इसके अलावा ज्यादातर राज्यों में ग्राम सभा की बैठकों की अनिवार्य संख्या 2 से 4 तक है। नई शिक्षा नीति के प्रभावी क्रियान्वयन के लिए यह आवश्यक है कि ग्राम सभा की बैठकों के लिये राज्यों सरकारों की ओर से सूचना, संचार तथा तकनीकि का प्रयोग करने की सशक्त नीति तय की जानी चाहिए। इन बैठकों की वीडियोग्राफी करा कर उत्तरदायित्यों को सुनिश्चित किया जा सकता है। शिक्षा के विकास के लिए ग्राम सभाओं की बैठको के दौरान कार्य सूची (एजेण्डा) तैयार कर उसे सालाना कैलेण्डर में शामिल कर विद्यालयों की स्थिति को बेहतर किया जा सकता है।[10] उक्त विषयों के लिए वित्त आयोग के द्वारा मूल अनुदान अनटाइड (अबद्ध) की व्यवस्था की गई है। इस अनुदान का उपयोग ग्रामीण स्थानीय निकाय विद्यालयों की विशिष्ट आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए बेहतर रूप से कर सकते हैं।[11] ग्राम पंचायतों को दिए जाने वाले पुरस्कारों की श्रेणियों में स्पष्ट तौर पर शिक्षा क्षेत्र और शिक्षा विकास पुरस्कारों को जोड़ कर स्थानीय स्तर पर शिक्षा की सेहत सुधारने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की जा सकती है। ग्राम पंचायत विकास योजना (GPDP) में स्थानीय निकायों और विद्यालयों के समन्वय से गाँव में पुस्तकालयों की स्थापना तथा विद्यालयों की भौतिक एवं मानवीय आवश्यकताओं के साथ–साथ आधुनिक सुविधाओं के लिए योजनायें तैयार की जा सकती हैं। नई शिक्षा नीति–2020 में शिक्षा के विकास के लिए शिक्षा विभाग के साथ–साथ अन्य विभागों जैसे– ग्रामीण विकास विभाग, नगरीय विकास विभाग के साथ समन्वय पर जोर होना चाहिए था, तभी स्थानीय स्तर पर सामाजिक सहभागिता और प्रशासनिक मशीनरी के उत्तरदायित्व को तय किया जा सकता है। इस समन्वय के फलस्वरूप स्थानीय स्तर पर शिक्षा क्षेत्र में व्याप्त व्यापक समस्याओं की पहचान कर उनका समाधान बृहद् स्तर पर किया जा सकता है।

नगरीय स्थानीय निकायों की उपलब्धियाँ देश में ब्रिटिश काल से ही देखने में मिलती हैं फिर चाहे वे राजनीतिक प्रशिक्षक के रूप में हों या फिर अन्य रूप में। राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान जब भारतीयों की प्रत्यक्ष भागीदारी स्थानीय निकायों में बढ़ी तो उनके द्वारा कई सराहनीय कार्य किए गए। 1920 ई. के दशक के बाद से स्थनीय निकायों ने शिक्षा में काफी रुचि लेना शुरू कर दिया था और अनेक नगरपालिकाओं ने अपने क्षेत्रों में मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा अधिनियम लागू कर दिये थे। एक तरह से देश में लोकतंत्र की मजबूती के लिए यह आवश्यक था कि नगरीय स्थानीय निकायों को संवैधानिक आधार प्रदान किया जाए। ये कार्य संविधान के 74वें संशोधन अधिनियम, 1992 के द्वारा संविधान में भाग '9–क' जोड़ कर किया गया। संविधान के अनुच्छेद–243–य में स्वायत्त शासन की संस्थाओं को 'नगरपालिका' नाम दिया गया जो कि

तीन प्रकार की हैं– नगर पंचायत, नगर परिषद, नगर निगम। इनके लिए संसाधन और अधिकार सुनिश्चित करने के लिए 12वीं अनुसूची में 18 विषय जोड़े गए हैं। जिनमें सांस्कृतिक, शैक्षणिक और सौंदर्यपरक आयामों की अभिवृद्धि प्रमुख हैं।[12] नगरीय निकायों को आत्म–निर्भर बनाने एवं विकास कार्यों को आगे बढ़ाने के लिए वित्त आयोग द्वारा वित्तीय आवंटन किया जाता है। जिसके आधार पर नगरीय निकाय सामुदायिक सहभागिता के माध्यम से अपनी योजनायें तय कर सकते हैं। अतः शिक्षा जैसे विषय को लेकर नगरीय स्थानीय निकायों को संवेदनशील और चिंतनीय होने की आवश्यकता है।

औपनिवेशिक काल में स्थानीय निकायों और शिक्षा दोनों पर ही अंग्रेजी हुकूमत ने अपने यूरोपीय और भारतीय सांस्कृतिक परिवेश दोनों के आधार पर सर्वेक्षण और प्रयोग किए थे। इन सर्वेक्षणों और प्रयोग के आधार पर अंग्रेजी हुकूमत ने शिक्षा पर शुरूआती दौर में हस्तक्षेप की नीति का अन्वेषण किया और केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति अपनायी। इसका परिणाम निश्चित तौर पर अंग्रेजी हुकूमत के ऊपर वित्तीय भार के रूप में आना था। इसलिए इन प्रयोगों की श्रृंखला निरन्तर चलती रही। इसी तरह का एक प्रयोग उत्तर–पश्चिम प्रांत में मिस्टर टॉमसन के द्वारा किया जा रहा था। इस प्रयोग में 1843 ई. से 1855 ई. के बीच मिस्टर टॉमसन ने प्रांत के हस्तगत किए गए जिलों में 'हल्काबन्दी विद्यालयों' को शुरू किया था। हल्काबन्दी विद्यालयों को सामुदायिक सहयोग के माध्यम से अप्रत्याशित सफलता मिली। ये विद्यालय तत्कालीन समय में एक नज़ीर बन गए थे। इसलिए निजी प्रोत्साहनों को बढ़ावा देना शुरू किया गया, ताकि 'प्रशासनिक मितव्ययिता' को व्यवस्थित किया जा सके।[13] टॉमसन के प्रयोग की सफलता से संतुष्ट हो कर डलहौजी ने 25 अक्टूबर, 1853 को देशी शिक्षा के पक्ष में अपना पत्र जारी किया। डलहौजी ने बंगाल, बिहार और पंजाब में टॉमसन की योजना लागू करने की सिफारिश की। इसी समय इंग्लैंड में नियंत्रण बोर्ड के अध्यक्ष सर चार्ल्स वुड अपना शिक्षा निर्देश पत्र तैयार कर रहे थे। ऐसे मौके पर डलहौजी की सिफारिशें वहाँ पहुंची।[14] तथा वुड के घोषणा पत्र में उनको जगह दी गई। 19 जुलाई, 1854 को चार्ल्स वुड का घोषणा–पत्र (डिस्पैच) जारी किया गया। डिस्पैच में 'सहायता अनुदान' पद्धति को लाया गया, यह पद्धति थॉमसन के द्वारा किए गए प्रयासों से उभर कर सामने आयी थी।[15] वुड की घोषणा ने अनुदानों की परंपरा की नींव को सुदृढ़ किया ताकि सरकारी खर्च पर से भार को कम किया जा सके। वुड के घोषणा–पत्र का मूल्यांकन करने के लिए डब्ल्यू. हंटर की अध्यक्षता में 1882 ई. में एक 'शिक्षा आयोग' का गठन किया गया। आयोग का मानना था कि देश में प्राथमिक शिक्षा का नियंत्रण जिला तथा नगर बोर्डों को सौंप दिया जाए। प्राथमिक शिक्षा के खर्च के बारे में कहा गया कि स्थानीय संस्थाओं के कर ही इसके प्रधान साधन हों और प्रांतीय सरकारें स्थानीय करों से एकत्र धनराशि का आधा इन्हें दें।'' आयोग की सिफारिशों के आधार पर सरकार ने प्राथमिक शिक्षा का सारा भार स्थानीय निकायों पर डाल दिया था।[16] इसके साथ ही 1919 ई. में भारत सरकार अधिनियम के द्वारा शिक्षा विभाग को हस्तांतरित विषय में रख कर भारतीय मंत्रियों के हाथों में सौंप दिया गया। इसके साथ ही शिक्षा

प्रांतों को हस्तांतरित कर दी गई तथा शिक्षा भारतीयों के नियंत्रण में आ गई। 1919 ई. में पंजाब में ग्रामीण और नगरीय दोनों क्षेत्रों में लड़कों के लिए अनिवार्य प्रारंभिक शिक्षा संबंधी कानून पास किए गए। उसी साल संयुक्त प्रांत ने लड़कों और लड़कियों के लिए म्युनिसिपल क्षेत्रों में प्रारंभिक शिक्षा अनिवार्य कर दी। बंगाल ने 1919 ई. में म्युनिसिपल क्षेत्रों में लड़कों के लिए इसे अनिवार्य बना दिया। बिहार और उड़ीसा ने ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों के लिए यह व्यवस्था लागू की। 1920 ई. में मध्य प्रांत और मद्रास ने ग्रामीण और शहरी इलाकों में लड़कों और लड़कियों के लिए प्रारंभिक शिक्षा को अनिवार्य बना दिया था। आम जनता में शिक्षा के प्रसार के लिए स्थानीय सरकारों के इस तरह के एक्ट वास्तव में बहुत लाभकारी थे।[17] इस बात को नजरांदाज नहीं किया जा सकता है कि अगर शिक्षा के विकास के लिए स्थानीय स्तर पर पहल की जाए तो उसके परिणाम बेहतर रूप में सामने आ सकते हैं। इन उदाहरणों को आधार बनाते हुए सरकार के द्वारा नई शिक्षा के प्रभावी क्रियान्वयन के लिए स्थानीय निकायों को माध्यम बनाने के बारे में कार्य करने की आवश्यकता है।

स्थानीय निकाय और शिक्षा के प्रबंधन पर 'राष्ट्रीय शिक्षा आयोग, 1964' ने सिफारिश की है कि स्थानीय स्वायत्त निकायों का शिक्षा क्षेत्र में सहयोजित करने का निर्णय राजनीतिक कारणों से नहीं बल्कि शैक्षिक कारणों से लिया जाना चाहिए। आयोग का मानना है कि ''जिला स्कूल बोर्ड का अधिकार क्षेत्र जिले का समस्त क्षेत्र होना चाहिए, परंतु जिले में जहाँ 1,00,000 या उससे भी अधिक जनसंख्या वाली नगरपालिकाएँ हों वहां उन नगरपालिकाओं के अपने शिक्षा बोर्ड हों तो अधिक अच्छा होगा। राज्य सरकार द्वारा दी गई हिदायतों का पालन करते हुए जिला बोर्ड की यह जिम्मेदारी होगी कि वह जिले के स्कूली शिक्षा के विकास की योजनाएं बनाएँ। इसके अलावा वह जिले में स्कूली शिक्षा का विकास करने का प्रमुख माध्यम होगा। इस कार्य के लिए उसे राज्य सरकार और राज्य शिक्षा विभाग से आवश्यक आर्थिक सहायता और मार्गदर्शन मिलेगा।''[18] देश की शैक्षिक प्रणाली में विश्वविद्यालय से नीचे की सम्पूर्ण शिक्षा के लिए शैक्षिक परिषद और जिला विद्यालय बोर्ड की स्थापना की संस्तुति कोठारी आयोग ने बड़े तर्कसंगत ढंग से दी थी। जिला स्तर पर गठित की जाने वाली जिला शिक्षा समिति विभिन्न शैक्षिक संस्थाओं को अपने में समेट कर शैक्षिक क्रियाकलापों को पूरा करने में सहायक सिद्ध होगी। इन समितियों के माध्यम से स्थानीय तौर पर अर्थसंग्रह करने, धनेतर साधनों को जुटाने जैसी सुविधाओं का सहकारिता के आधार पर उपयोग, मध्याह्न भोजन, पुस्तकों और वस्त्रों का एकत्रीकरण आदि में आसानी रहेगी।[19] शिक्षा आयोग की यह स्पष्ट पहल इस बात को सिद्ध करती है कि भारत जैसे देश में शिक्षा के विकास को स्थानीय निकायों की भूमिका को बढ़ा कर ही सुनिश्चित किया जा सकता है।

1976 ई. में संविधान संशोधन के जरिये शिक्षा को राज्य सूची के विषय से उठा कर समवर्ती सूची में लाया गया ताकि केन्द्र को शिक्षा के विकास के लिए अधिक व्यापक आधार मिल सकें। इसी के साथ शिक्षा में केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति को बल मिलने लगा और यह प्रवृत्ति

दिन पर बलवती होती जा रही है। यह केन्द्रीयकरण की प्रक्रिया किन रणनीतियों के रूप में काम करती है, इस ओर हमारा ध्यान अनिल सद्गोपाल ने खींचा है।[20] 73वें संविधान संशोधन के द्वारा ग्राम पंचायतों को शिक्षा क्षेत्र में दिए गए अधिकारों को स्पष्ट नहीं किया गया है। इसलिए नई शिक्षा नीति–2020 में यह बहुत जरूरी था कि स्थानीय स्तर की शिक्षा के लिए ग्राम पंचायतों, क्षेत्र या खण्ड पंचायतों और जिला पंचायतों के कार्यों एवं अधिकारों को स्पष्ट किया जाता।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति– 1986 में प्राथमिक शिक्षा से लेकर उच्चतर माध्यमिक स्तर तक की शिक्षा का जिला स्तर पर प्रबंधन करने के लिए 'जिला शिक्षा बोर्डों' के गठन की बात की गई थी।[21] राष्ट्रीय शिक्षा नीति–1986 तथा पंचायतीराज अधिनियम में राज्य सरकारों की यह भूमिका तय की गई थी कि वे स्थानीय स्तर पर सामाजिक न्याय तथा सांस्कृतिक विकास के लिए विकेन्द्रीकरण के द्वारा ग्रामों को सशक्त करेंगी। शिक्षा के विकास के लिए ग्राम शिक्षा समितियों को मजबूत बनाने की जिम्मेदारी भी राज्य सरकारों की थी।[22] इस बात को राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 में ले जाकर, उसके प्रभावी क्रियान्वयन को सुनिश्चित करने में काफी हद तक सहायक सिद्ध होगी। राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 के माध्यम से शिक्षा व्यवस्था में विकेन्द्रीकरण करने के प्रयासों को बढ़ावा देकर विद्यालयी शिक्षा के विकास में आम–जन की भूमिका को सहभागिता के आधार पर बढ़ाया जा सकता है।

शिक्षा के विकेन्द्रीकरण के बारे राष्ट्रीय पाठ्यक्रम की रूपरेखा, 2005 का मानना है कि 'पूरकता' पंचायती राज का आधार है। इस सिद्धान्त के अनुसार ''जो काम जिस स्तर पर सम्भव है उसे उसी स्तर पर किया जाना चाहिए न कि उससे उच्च स्तर पर।'' अतः पंचायती राज को विभिन्न स्तरों पर बनायी गयीं जिला साक्षरता समितियाँ, जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम समितियाँ और तालुका एवं ग्राम स्तर पर गठित इन समितियों से पंचायती राज संस्थाओं की शक्तियाँ काफी हद तक कमजोर हुई हैं। इनका कारण ये है कि पंचायती राज के विभिन्न स्तरों में कार्यों और उपलब्ध धन को लेकर समन्वय न होना और गाँव स्तर पर समानान्तर समितियों के गठन से प्रजातांत्रिक तरीके से निर्वाचित संस्थाओं का हाशिए पर धकेल दिया जाना। यह एक तरह से स्थानीय नियोजन में जन–भागीदारी का मजाक है।[23] इस प्रकार के निष्कर्ष ये बताते हैं कि राज्य सरकारों द्वारा स्थानीय स्तर पर जनता में अपने उत्तरदायित्वों के प्रति राजनीतिक चेतना के विस्तार की आवश्यकता किस स्तर पर है। अतः जन–भागीदारी को बढ़ाकर भविष्य के शिक्षा ढाँचे को व्यापक रूप प्रदान किया जा सकता है।

बालकों का नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 जिसमें 6 से 14 वर्ष तक के सभी बच्चों को निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने के लिए 'स्थानीय प्राधिकार' की भूमिका को नगर निगम या नगर पालिका परिषद या जिला परिषद या नगर पंचायत के रूप में देखा गया है। अधिनियम की धारा–9 में स्थानीय प्राधिकरण के कर्तव्य को सुनिश्चित करते हुए कहा गया कि क. वह हर बालक को निःशुल्क और अनिवार्य प्रारम्भिक शिक्षा प्रदान करेगा, परन्तु जहाँ बच्चे का उसके माता–पिता या संरक्षक द्वारा यथास्थिति

समुचित सरकार या स्थानीय प्राधिकरण द्वारा स्थापित स्वामित्वाधीन, नियंत्रणाधीन या प्रत्यक्षतः अथवा परोक्ष रूप से प्रदत्त कोष द्वारा सारभूत रूप से वित्तपोषित विद्यालय के अतिरिक्त अन्य विद्यालय में प्रवेश कराया जाता है, वहाँ ऐसा बच्चा या उसके या उसकी माता–पिता या संरक्षक यथास्थिति ऐसे अन्य विद्यालय में शिक्षा पर उपगत व्यय की प्रतिपूर्ति के लिये दावा करने का हकदार नहीं होता है। स्थानीय प्राधिकार यह सुनिश्चित करेगा कि कमजोर वर्ग से सम्बन्धित बच्चे और अलाभप्रद समूह से सम्बन्धित बच्चे के विरूद्ध किन्हीं आधारो पर विभेद नहीं किया जाता और प्रारम्भिक शिक्षा ग्रहण करने तथा पूरा करने से निवारित नहीं किया जाता है। अपनी अधिकारिता के अन्तर्गत हर बच्चे द्वारा प्रवेश, उपस्थिति और प्रारम्भिक शिक्षा के पूरा करने को सुनिश्चित करेगा और अनुवीक्षण करेगा। अधिनियम की धारा–22 में विद्यालय विकास योजना के तहत तैयार की गयी योजनाओं के लिए स्थानीय प्राधिकरण द्वारा निर्मित की जाने वाली योजनाओं और अनुदानों के लिये आधार माना गया है।[24] शिक्षा अधिकार अधिनियम, 2009 में 25 प्रतिशत बच्चों को मुफ्त शिक्षा की बात की गई है, लेकिन राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 में उस दायरे के बढ़ाने पर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता थी ताकि अधिकाधिक बच्चों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की उपलब्धता सुनिश्चित की जाती। अनिल सद्गोपाल का मानना है कि आजादी के बाद ''प्रारम्भिक शिक्षा प्रणाली के संख्यात्मक विस्तार के कारण शिक्षकों, बच्चों और स्थानीय समुदाय के प्रति अविश्वास बढ़ गया है, जिसके चलते शिक्षा प्रणाली में लोचहीनता बढ़ गई है। इसके साथ ही निर्णय प्रक्रिया में सामुदायिक भागीदारी के अभाव और शिक्षकों के स्थानान्तरण के लिए जानबूझ कर बनायी गयी भ्रमात्मक नीतियों के कारण समुदाय से अलग–थलग कर दिया गया है।''[25] वर्तमान में उदारीकरण के दौर में सरकारी विद्यालयों के प्रति जिस प्रकार की अविश्वसनीयता बढ़ती गई है उससे निजी क्षेत्र के विद्यालयों को विकसित होने के लाभप्रद अवसर मिल गए हैं। इन निजी विद्यालयों में स्थानीय निकायों का हस्तक्षेप न के बराबर होने के कारण वे निरंकुशता और शोषण के प्रतीक बनते जा रहे हैं। इसलिए निजी विद्यालयों को ग्राम शिक्षा समितियों के दायरे में लाकर निरंकुशता और शोषण को खत्म करने सहयोग मिलेगा। नई शिक्षा नीति के क्रियान्वयन में इस बात का ध्यान रखने की विशेष आवश्यकता है।

अगर आज ग्राम शिक्षा समिति की भूमिका को नजरंदाज किया जाता है तो ये भारतीय लोकतंत्र को कमजोर करने की दिशा में किया जा रहा कार्य होगा। तब सवाल यह उठेगा कि विद्यालय और स्थानीय पुस्तकालयों की स्थापना और संचालन का कार्य किसका होगा ? बच्चों के पोषण और स्वास्थ्य के लिए उपलब्ध कराये जाने वाले भोजन में स्थानीय निकायों की क्या भूमिका रहेगी ? विभिन्न आयोगों और समितियों की सिफारिशों के बावजूद भारतीय शिक्षा सेवा अधर में ही लटकी हुई है। इसका कारण यह है कि उक्त सेवा के शुरू होने पर राज्य सरकारों के हाथ से एक बड़ा वोट बैंक हाथ से निकल जाएगा। विद्यालयों के लिए शिक्षकों का चयन आजकल चुनावों का एक अहम मुद्दा होता है। अगर भारतीय शिक्षा सेवा को शुरू किया जाता है

तो इसे न सिर्फ केन्द्र स्तर पर शुरू किया जाएगा बल्कि राज्य स्तर पर भी ये शुरू होगी। एक सेवा के रूप में आने पर इसमें प्रतिवर्ष शिक्षकों का चयन करना पड़ेगा। जब शिक्षकों का चयन नियमित रूप से होने लगेगा तो इससे शिक्षा की गुणवत्ता बढ़ाने में अहम सहयोग मिलने लगेगा।

ड्रॉप आउट बच्चों को विद्यालय वापस लाने और 'सरकारी विद्यालयों की विश्वसनीयता' स्थापित करने के लिए राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 में जिन दो बातों पर बात की गई है। उनमें पहली बात प्रभावी और पर्याप्त बुनियादी ढाँचे के विकास की है और दूसरी बात विद्यालयों में बच्चों की सहभागिता बढ़ाने के लिए ट्रैकिंग करना।[26] इन दोनों ही कार्यों को बेहतर रूप से करने के लिए स्थानीय निकायों के माध्यम से सामुदायिक सहभागिता को बढ़ा कर विद्यालयों से प्रत्यक्ष रूप से जोड़ने के बारे में सोचा जा सकता है। इसके लिए नगरीय विकास विभागों और पंचायती राज संस्थानों को शिक्षा विभाग के साथ आपस में जोड़ने के लिए स्पष्ट पहल की जरूरत है। शिक्षा के विकास के लिए स्थानीय निकायों के कर्तव्यों और कार्यों को राज्य सरकारों के द्वारा विधायी रूप से तैयार किया जाना चाहिये।

देश में शिक्षा व्यवस्था के विकास में पंचायती राज संस्थान के रूप में कार्य करने वाली ग्राम सभा की सक्रीयता को सारणी के माध्यम से समझा जा सकता है। धीरे–धीरे ग्राम सभाओं में जैसे–जैसे सामुदायिक सहभागिता बढ़ती जा रही है वैसे–वैसे ग्राम सभाओं में बनने वाली योजनाओं का विस्तार भी होता जा रहा है। अब इन बैठकों में शिक्षा के लिए भी कदम उठाये जा रहे हैं।

सारणी[27]

30 सितंबर 2009 को ग्राम शिक्षा समिति के साथ गाँव और आयोजित बैठकों की संख्या:

क्र. सं.	राज्य/केंद्र शासित प्रदेश	VEC के साथ गांव की संख्या	शून्य बैठकों की संख्या के साथ गांव	एक बैठक की संख्या के साथ गांव	दो बैठकों की संख्या के साथ गांव	तीन बैठकों की संख्या के साथ गांव	तीन से अधिक बैठकों की संख्या के साथ गांव
1	अंडमान निकोबार द्वीप समूह	220	3	29	92	55	41
2	आंध्र प्रदेश	8583	690	446	1801	691	4955
3	अरुणाचल प्रदेश	2460	89	365	996	646	364
4	असम	18330	481	1670	3996	3416	8767
5	बिहार	7696	1517	300	357	135	5387
6	चंडीगढ़	12	1	0	3	1	7
7	छत्तीसगढ़	17766	841	403	2298	2621	11603
8	दादरा नगर हवेली	66	0	3	1	2	60
9	दमन दीव	24	4	6	6	5	3

क्र. सं.	राज्य/केंद्र शासित प्रदेश	VEC के साथ गांव की संख्या	शून्य बैठकों की संख्या के साथ गांव	एक बैठक की संख्या के साथ गांव	दो बैठकों की संख्या के साथ गांव	तीन बैठकों की संख्या के साथ गांव	तीन से अधिक बैठकों की संख्या के साथ गांव
10	दिल्ली	17	0	14	1	0	2
11	गोवा	306	4	111	141	30	20
12	गुजरात	16506	346	365	611	1258	13926
13	हरियाणा	6632	159	235	970	946	4322
14	हिमाचल प्रदेश	9578	262	358	1036	1573	6349
15	जम्मू कश्मीर	6126	74	181	948	861	4062
16	झारखंड	25687	643	323	2023	1254	21444
17	कर्नाटक	12973	916	829	1305	659	9264
18	केरल	846	48	32	88	149	529
19	लक्षद्वीप	7	1	1	1	2	2
20	मध्य प्रदेश	28390	3255	1354	2368	1367	20046
21	महाराष्ट्र	38193	515	218	471	651	36338
22	मणिपुर	2225	37	72	587	572	957
23	मेघालय	3685	775	503	988	587	832
24	मिजोरम	560	10	30	51	64	405
25	नगालैंड	1209	0	13	68	228	900
26	उड़ीसा	36076	1171	1097	2391	1601	29816
27	पुडुचेरी	87	2	5	14	21	45
28	पंजाब	10521	289	315	465	259	9193
29	राजस्थान	11761	1562	1151	2651	1559	4838
30	सिक्किम	208	11	32	77	38	50
31	तमिलनाडु	14153	201	110	197	152	13493
32	त्रिपुरा	779	33	26	115	115	490
33	उत्तर प्रदेश	10835	354	1226	2124	1426	5705
34	उत्तराखंड	75092	3806	1389	8251	2687	58959
35	पश्चिम बंगाल	32652	656	1372	8047	3214	19363
	भारत	**4,00,261**	**18756**	**14584**	**45539**	**28845**	**292537**

सारणी से स्पष्ट है कि वर्ष 2009 में देश भर में 4,00,261 गाँव की ग्राम सभाओं में ग्राम शिक्षा समितियों का गठन किया गया था। यह बात ये सिद्ध करती है कि ग्रामीण स्तर पर शिक्षा का विकास करने के लिए यदि स्थानीय स्तर पर राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 में पहल की जाती है

तो उसके अच्छे परिणाम सामने आ सकते हैं। इतना ही नहीं उत्तराखण्ड जैसा छोटा राज्य ये प्रदर्शित करता है कि उसने पंचायतों को सशक्त बनाने के दिशा में गहन प्रयास किए हैं। सारणी में उत्तराखण्ड प्रथम स्थान पर है। उत्तराखण्ड ने 75,092 गाँव में ग्राम शिक्षा समितियों का गठन किया है। इतना ही नहीं उसने ये रिकॉर्ड भी बनाया कि 58,959 गाँव की ग्राम सभाओं ने वर्ष में तीन से अधिक बैठकों को आयोजित किया है। उत्तराखण्ड का यह प्रयास सिद्ध करता है कि गाँव के लागों की स्थानीय स्तर के निर्णयों में सक्रियता बढ़ी है। सारणी में दूसरे स्थान पर महाराष्ट्र और तीसरे स्थान पर उड़ीसा है। इन तीनों राज्यों की सक्रिय भागीदारी दिखाती है कि धीरे-धीरे स्थानीय स्तर पर सामुदायिक सहभागिता बढ़ती जा रही है। इन राज्यों के द्वारा ग्रामीण विकास के लिए पंचायती राज संस्थाओं को मजबूत बना कर तथा लोगों में राजनीतिक चेतना विकसित करके उन्हें अपनी स्थानीय समस्याओं को ग्राम स्तर पर प्राथमिकता के आधार पर सुलझाने का रास्ता दिखाया जा रहा है। यह भारतीय लोकतंत्र के लिए बेहतर संकेत हैं। इसलिए नई शिक्षा नीति-2020 के क्रियान्वयन में ग्राम शिक्षा समिति की भूमिका को अधिक व्यापक बनाने की आवश्यकता है।

एम. के. श्रीधर और मनसा नागभूषणम का मानना है कि ''सामुदायिक भागीदारी शिक्षा को समाज से जोड़ने वाली कड़ी है।'' राष्ट्रीय शिक्षा नीति के संबंध में उनका मानना है कि इस नीति में ऐसी सार्वजनिक शिक्षा प्रणाली की कल्पना की गई है जिसमें लोकोपकारी निजी और सामुदायिक हिस्सेदारी हो, इस भागीदारी के लिए वे 'विद्यालय विकास और निगरानी समिति' के माध्यम से विद्यालयों में सामुदायिक सहभागिता को माध्यम बनाते हैं।[28] लेकिन वे यह स्पष्ट नहीं करते कि सामुदायिक भागीदारी स्थानीय निकायों के माध्यम से रहेगी या सिर्फ समिति के द्वारा- स्थानीय निकायों को शिक्षा का प्रबंधन देने और स्थानीय निकायों के द्वारा शिक्षा व्यवस्था के संचालन में उनकी भूमिका को स्पष्ट नहीं किया गया है। विद्यालय स्तर पर सरकारी, सहायता प्राप्त और निजी सभी प्रकार के विद्यालयों में स्थानीय निकायों की सहभागिता और निगरानी के लिए राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 के प्रभावी क्रियान्वयन में स्पष्ट दिशा-निर्देशों की आवश्यकता है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 के अध्याय-7 में 'विद्यालय परिसर' 'स्कूल कॉम्प्लेक्स/क्लस्टर' की संरचना का प्रावधान लाया गया है। इस विद्यालयी परिसर संरचना के माध्यम से विद्यालयों की स्थिति बेहतर करने के प्रयासों को बढ़ावा देने के रास्ते के रूप में देखा जा रहा है। इन स्कूल कॉम्प्लेक्स में सरकारी मशीनरी जैसे। जिला शिक्षा अधिकारी और ब्लॉक शिक्षा अधिकारी की भूमिका को तो स्पष्ट किया गया है[29] लेकिन नीति के क्रियान्वयन के लिए स्थानीय निकायों की सहभागिता को बढ़ाना आवश्यक है। स्थानीय निकायों की सहभागिता के बिना शिक्षा विद्यालय परिसर की कल्पना अधूरी प्रतीत होती है। ग्राम स्तर से लेकर जिला स्तर की शिक्षा योजना का निर्माण और प्रबंधन सिर्फ विद्यालय प्रबंधन समितियों के आधार पर करने

के प्रयास किए जा रहे हैं। इन विद्यालयों के पुनरूत्थान के लिए नीति के क्रियान्वयन में ग्राम शिक्षा समिति की भूमिका को व्यापक आधार दिया जाना चाहिए। कृष्ण कुमार भारतीय शिक्षा व्यवस्था और विद्यालयों के प्रबंधन के मामले में स्पष्ट तौर पर कहते हैं कि ''अध्यापक के लिए चुने हुए प्रतिनिधियों का प्रत्यक्ष महत्त्व बहुत कम है, क्योंकि शिक्षा उन विषयों में से नहीं है जिनमें नौकरशाही प्रतिनिधियों की मदद से काम करती है। शिक्षा पूरी तरह कार्यालयी विषय है, इसलिए अध्यापक पूरी तरह अधिकारी पर निर्भर है।''[30] स्थानीय निकायों की भूमिका को सशक्त करके विद्यालयों को कार्यालयी विषय से निकाल कर वास्तविक स्थिति में लाया जा सकता था। शिक्षा व्यवस्था में जितना अधिक जनभागीदारी को बढ़ाया जायेगा उतना अधिक इस बात की संभावना है कि शिक्षा को गुणात्मक और मात्रात्मक रूप से पहुँच योग्य बनाया जा सकता है। नीपा की राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 पर 'क्रियान्वयन रणनीति' दस्तावेज जो दिसम्बर, 2020 में प्रकाशित हुआ है। उसमें राष्ट्रीय शिक्षा नीति लागू करने के लिए विद्यालय प्रबंधन समिति की बात तो की गई है लेकिन ग्राम शिक्षा समिति का कहीं पर भी जिक्र नहीं किया गया है। इस दस्तावेज में ये जरूर बताया गया है कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति लागू करने में विभिन्न विभागों के बीच समन्वय कर इसे लागू किया जाएगा।[31] यह एक अच्छी पहल कही जा सकती है जो सरकार के अलग–अलग विभागों के बीच शिक्षा के विकास के लिए कार्य करेगी।

स्थानीय स्तर की शिक्षा का प्रबंधन ब्रिटिश काल से ही स्थानीय निकायों के हाथ में रहा है और तो और इस पूरे काल में इन निकायों ने शिक्षा के विकास में कई कीर्तिमान स्थापित किए हैं। परन्तु वर्तमान परिप्रेक्ष्य में नगरीय निकायों का शिक्षा के विकास में रुख उपेक्षापूर्ण नजर आ रहा है जिसके लिए शायद केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति अधिक जिम्मेदार है। देश में अधिकांश छावनी परिषदों के प्रबंधन में संचालित विद्यालय मिशाल के रूप में कार्य कर रहे हैं। अगर ये विद्यालय मिशाल पेश कर रहे हैं तो फिर राज्य सरकारों के अधीन ग्रामीण और नगरीय स्थानीय निकाय इस तरह की मिशाल क्यों नहीं बन पा रहे हैं? यह एक बड़ा सवाल है और जिसका जवाब खोजने की वास्तविक रूप से जरूरत है।

वर्तमान परिदृश्य में शिक्षा क्षेत्र में स्थानीय निकायों के अहस्तक्षेप का जो प्रभाव दिखाई पड़ रहा है वह सरकारी तथा निजी दोनों प्रकार के विद्यालयों पर है। सरकारी और निजी दोनों ही प्रकार के विद्यालयों में विद्यालय प्रमुखों की अपनी मनमानियां चल रहीं हैं। इसको अगर उदाहरण के रूप में देखना हो तो सरकारी विद्यालयों की अभावग्रस्त स्थिति का अंदाज लगा कर देख सकते हैं। अगर निजी विद्यालयों को देखना हो तो फिर उन विद्यालयों की प्रवेश प्रक्रिया, फीस ढांचा और सबसे बड़ी बात इन विद्यालयों द्वारा चलायीं जा रही पाठ्य पुस्तकें। ये पाठ्य पुस्तकें कोई आम पाठ्य पुस्तकें नहीं हैं बल्कि आर्थिक और भौतिक रूप में भारी हैं, जो

बच्चों के कंधों पर तो बोझ है ही साथ ही अभिभावकों पर बड़ा बोझ बनी हुई हैं। स्थानीय स्तर पर अगर स्थानीय निकायों की शिक्षा में सक्रियता बढ़ायी जाये तो इन समस्याओं से बहुत ही आसानी से उबरा जा सकता है। अन्यथा में यह उपेक्षापूर्ण स्थिति समाज में गहरी खाई खोद देगी तथा समाज में विषमता बढ़ाने में मदद करेगी। इस स्थिति में संविधान में निहित समानता का अधिकार कमजोर होने की काफी अधिक संभावना बढ़ जाती है। देश की भावी पीढ़ी के भविष्य की जिस शिक्षा व्यवस्था की आधार संरचना राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 के द्वारा की जा रही है उसके सही दिशा में क्रियान्वयन को स्थानीय निकायों के माध्यम से लोगों की सहभागिता बढ़ा कर आसान किया जा सकता है।

---

1. अध्यक्ष, इतिहास विभाग
डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.)
2. सहायक प्राध्यापक
पंजाब केन्द्रीय विश्वविद्यालय, बटिंडा (पंजाब)

सन्दर्भः

1. हेरिस, जी., मॉण्टेग्यु, कम्प्रेटिव लोकल गवर्नमेण्ट, हचिन्सन्स युनिवर्सिटी लाइब्रेरी, लंदन, 1948. पृ.14.
2. माथुर, एल. पी., भारत में लार्ड रिपन का प्रशासन (1880-1884 ई.) पब्लिकेशन स्कीम, जयपुर, 1972, पृ. 161.
3. शुक्ल, रामलखन, आधुनिक भारत का इतिहास, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन, दिल्ली वि. वि., दिल्ली 2006, पृ. 784.
4. माहेश्वरी, श्रीराम, भारत में स्थानीय शासन, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा, 2016, पृ. 31.
5. गांधी, मो. क. मेरे सपनों का भारत, सर्व सेवा संघ, प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी 1960, पृ. 95.
6. माहेश्वरी, श्रीराम, पूर्वोक्त पृ. 130-37.
7. बसु, दुर्गादास, भारत का संविधानः एक परिचय, वाथवा एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली, 2007, पृ. 277-279.
8. योजना, नवम्बर, 2021, पृ. 35.
9. योजना, नवम्बर, 2021, पृ. 55.
10. योजना, नवम्बर, 2021, पृ. 6-9.
11. योजना, नवम्बर, 2021, पृ. 17.
12. भारत का संविधान, विधि और न्याय मंत्रालय भारत सरकार, नई दिल्ली, 09 दिसम्बर, 2020 को यथाविद्यमान, पृ. 115-16.
13. सरकार, सुमित, आधुनिक काल, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, 2021, पृ. 53.

14. नायक, जे. पी. तथा सैयद नुरुल्ला, भारतीय शिक्षा का इतिहास, दी मैकमिलन कम्पनी ऑफ इण्डिया लि., नई दिल्ली, 1976, पृ. 97-98.

15. नायक, जे. पी. तथा सैयद नुरुल्ला, पूर्वोक्त, पृ. 125.

16. वही, पृ. 157.

17. चोपड़ा, पुरी तथा दास, भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक इतिहास, भाग–3, मैकमिलन, दिल्ली, 1975, पृ. 285.

18. शिक्षा आयोग की रिपोर्ट (1964-66), शिक्षा और राष्ट्रीय विकास, शिक्षा मंत्रालय भारत सरकार, नई दिल्ली, 1968, पृ. 510-512.

19. मल्होत्रा, पी. एल., (सं.), भारत में विद्यालयी शिक्षा, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद, नई दिल्ली, 1986, पृ. 62.

20. सद्‌गोपाल, अनिल, शिक्षा में बदलाव का सवाल, ग्रंथ शिल्पी (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, 2009, पृ. 168-69.

21. National Education Policy-1986 & Progrmme of Action 1992, Ministry of Human Resource Development Department of Education, 1992, P. 112-13.

23. राष्ट्रीय पाठ्यक्रम की रूपरेखा, 2005, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद, नई दिल्ली, 2005, पृ. 119.

24. भारत का राजपत्र, असाधारण खण्ड–... सं. 39, जनरल मैनेजर, गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया प्रेस, नई दिल्ली, 2009, पृ. 1-8.

25. सद्‌गोपाल, अनिल, शिक्षा में बदलाव का सवाल, ग्रंथ शिल्पी (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, 2009, पृ. 168.

26. राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, 2021, पृ. 14.

27. https://data.gov.in/resources/villages-village-education-committee-vec-and-number-meetings-held-sept-2009.

29. राष्ट्रीय शिक्षा नीति : 2020, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, पृ. 44-46.

30. कुमार, कृष्ण, राज, समाज और शिक्षा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013, पृ. 70.

31. NEP 2020: Implementation Strategies, NIEPA, New Delhi, Dec., 2020, P. 6.

उस भाषा को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए जो देश के सबसे बड़े हिस्से में बोली जाती हो, अर्थात, हिंदी।

– राष्ट्रकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर

अध्यापक शिक्षा का विमर्श और राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020

– डॉ. संजय शर्मा

राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 का दस्तावेज़ इस रूप में भी विशिष्ट है कि यह नीति, रीति और संदर्भ में स्वयं ही अपने क्रियान्वयन की रणनीतियों एवं प्रक्रियाओं के लिए मार्ग प्रशस्त करता है। इस आलोक में शिक्षा नीति के सफल सञ्चालन की जिम्मेदारी और जवाबदेही शिक्षा संस्थानों और शिक्षकों की हो जाती है। गौरतलब है कि विश्वस्तरीय गुणात्मक शैक्षिक संस्थाओं के अभाव से जूझ रहे भारतीय अकादमिक जगत के लिए यह एक सुअवसर है जहाँ वह अपने सम्पूर्ण कलेवर (संरचना, प्रक्रिया, विनियम, पाठ्यक्रम, अनुसन्धान, संसाधन आदि) को नए अर्थ–संदर्भों में पुनर्संरचित करते हुए और अधिक प्रासंगिक बना सके।

इस शिक्षा नीति ने शिक्षकों पर सर्वाधिक भरोसा किया है, बावजूद इसके कि शिक्षक–शिक्षा के मूल्यांकन के लिए गठित न्यायमूर्ति जे.एस. वर्मा कमेटी (2012) की रिपोर्ट यह बताती है कि अयोग्य शिक्षक तैयार करके हम देश के 370 मिलियन से अधिक बच्चों को खतरे में डाल रहें हैं।

शिक्षकों में सीखने के प्रति उपेक्षा, अपनी क्षमताओं का उचित मूल्यांकन न कर पाना और अपनी नेतृत्व क्षमता के प्रति अविश्वास के कारण ही शिक्षक स्वयं को एक 'सामाजिक परिवर्तनकर्ता' के रूप में प्रस्तुत नहीं कर सकें हैं। मसलन अधिकांश शिक्षकों के पास स्व–मूल्यांकन के प्रति कोई व्यवस्थित, ज्ञानात्मक एवं संरचनात्मक दृष्टि नहीं हैं, जिसके आधार पर वे अपने उत्तरोत्तर विकास को देख सकें। शिक्षा संस्थानों में मौजूद 'संरचनात्मक जड़ता, बौद्धिक पदानुक्रम एवं सीखने की संस्कृति' का अभाव भी अक्सर शिक्षकों को सीखने से रोकता है। यह राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 शिक्षकों को उनकी वर्तमान पारम्परिक एवं जड़ कार्य–संस्कृति, असुरक्षित सेवा स्थितियाँ एवं अपर्याप्त वेतन देने जैसे विभिन्न प्रकार के उत्पीड़नों आदि से बाहर निकालने में समर्थ है।

भारतीय कक्षाओं में बेहतर नहीं सीख पाने की स्थितियों के लिए शिक्षकों को दोष देने के बजाय, यह शिक्षा नीति, शिक्षकों की गुणवत्ता और उनमें प्रेरणा की कमी के लिए शिक्षक–शिक्षा, असुरक्षित सेवा नियोजन, कार्य संस्कृति के अभाव, असम्मानजनक सेवा शर्तों आदि के परिणामस्वरूप विकसित हुई निराशाजनक कार्यात्मक संरचनाओं एवं स्थितियों को जिम्मेदार ठहराती है।

21वीं सदी केवल शिक्षार्थियों के लिए ही नहीं वरन शिक्षकों के लिए भी उतनी ही चुनौतीपूर्ण है। यह एक ऐसा अवसर है जहाँ शिक्षक और शिक्षार्थी दोनों ही ज्ञान की नूतन विषय–वस्तुओं एवं संदर्भों के साथ पहली बार अंतर्क्रिया कर रहे है। ऑनलाइन शिक्षा, मशीन–अधिगम और कृत्रिम बुद्धिमत्ता की अवधारणा दोनों के लिए ही नवीन है।

वैश्विक स्तर पर पिछले कई दशकों से 'शिक्षक' और 'शिक्षण व्यवसाय' चिंता का विषय बना हुआ है। भारत में लगभग 9.7 मिलियन शिक्षकों की व्यावसायिक भूमिका और पहचान को स्कूली शिक्षा के विस्तार ने विविधतापूर्ण और चुनौतीपूर्ण बताया है (नो टीचर – नो क्लास, यूनेस्को रिपोर्ट–2021)। ऐसे में भारतीय शिक्षकों से 'पारम्परिक गुरु' और 'आधुनिक शिक्षाशास्त्र के ज्ञान' से संपन्न और समृद्ध होने की उम्मीद की जाती है।

वस्तुत: अध्यापकों के लिए व्यावसायिक मानकों को विकसित करने का प्रमुख उद्देश्य शिक्षण–अधिगम की गुणवत्ता को बढ़ाने के लिए उत्तरदायी मानकों का निर्माण करना है। इस क्रम में राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 के पैरा क्रमांक 5.20 के आलोक में राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद (एन.सी.टी.ई.) ने शिक्षकों के लिए व्यावसायिक मानकों पर एक प्रारूप तैयार किया है। यह शिक्षक गुणवत्ता का गठन करने वाला एक सार्वजनिक संकल्प–पत्र है।

बौद्धिक रचनात्मकता के इस माहौल में शैक्षिक संस्थानों, शिक्षकों और शैक्षिक नेतृत्व को अपने परंपरागत क्षेत्र से बाहर आकर व्यावहारिक अधिगम प्रणाली को विकसित करने के लिए आधुनिक व्यावसायिक मानकों को आत्मसात करना होगा। वैज्ञानिक अनुसन्धान और नवाचारों हेतु इस प्रकार के पारिस्थितिकी–तंत्र और कार्य–संस्कृति को विकसित और पोषित करना होगा जिससे संसाधनों के भागीदारीपूर्ण सृजन के साथ–साथ लोकतान्त्रिक एवं समतामूलक वितरण भी सुनिश्चित हो सके।

ऐसा करके ही 21वीं सदी का शिक्षक सामाजिक–सांस्कृतिक परिवर्तन का माध्यम बनते हुए व्यक्ति, समाज और मानवता को साभ्यतिक सार्थकता प्रदान कर सकेगा। शिक्षकों की यह नैतिक जिम्मेदारी है कि वे एक दूसरे से सीखते हुए स्वयं को समृद्ध, नवाचारी और जीवंत बनाये रखें ऐसा करके ही वे राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 के उद्देश्यों को पूरा कर सकेंगे।

शिक्षा नीति इस बात पर सहमत दिखती है कि बेहतर शिक्षक पैदा नहीं होते, बल्कि प्रशिक्षणों के माध्यम से तैयार किये जाते है। इस तरह की वैचारिकी ही विलक्षण एवं चिंतनशील आधुनिक युवा पीढ़ी को शिक्षक–शिक्षा के क्षेत्र में कार्य करने के लिए प्रेरित कर सकेगी।

भारतीय शिक्षा व्यवस्था की चुनौतियाँ ही इस शिक्षा नीति की व्यावहारिक चुनौतियाँ भी

है, मसलन 2030 तक 2 करोड़ बच्चों को शिक्षा की मुख्यधारा में लाना, माध्यमिक शिक्षा तक सार्वभौमिक पहुँच और सौ प्रतिशत नामांकन के साथ–साथ, 2035 तक उच्चतर शिक्षा में 50 प्रतिशत नामांकन को सुनिश्चित करना तथा शिक्षा पर व्यय को सकल घरेलू उत्पाद के 1.7 से बढ़ाकर 06 प्रतिशत तक करना इस शिक्षा–नीति के सांख्यिकीय संकल्प हैं।

वस्तुतः भारतीय जन संस्कृति और साभ्यतिक वांग्मय ज्ञान, न्याय और समता की साधना को अभीष्ट के रूप में आत्मसात करता है। हमें अपने इतिहासबोध को 'सांस्कृतिक पंगुता से मुक्ति' के वैचारिक आन्दोलन के रूप देखना चाहिए। क्योंकि यह हमें अपने साभ्यतिक सह–अस्तित्व के उदात अद्वैतिक स्वरुप को 'सार्वभौमिक मानवतावाद' के रूप में एक नई वैचारिक प्रदान करता है। इस संदर्भ में यह शिक्षा नीति इसी प्रेरणा को निष्ठा में बदलने का 'प्रशासनिक सर्कुलर' नहीं बल्कि 'जन संकल्प–पत्र' है। यही इसके अभीष्ट और क्रियान्वयन का प्रक्टिकम है।

सहायक प्राध्यापक
जीवनपर्यंत शिक्षा विभाग
डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय
सागर (म.प्र.)

जो मुट्ठी भर लोग हिन्दी का
विरोध करते हैं,
वे नौकरियों और अधिकारों को
अपने हाथ में रखने के
स्वार्थवश ऐसा करते हैं।
– माधव श्रीहरि अणे

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 में भाषाओं के समागम का महत्त्व

– डॉ. नीरज उपाध्याय

भारत विविधताओं का देश है। मोतियों की तरह कई संस्कृतियाँ इस देश में हज़ारों वर्षों से यूं गुथी हुई हैं कि पूरा देश अनेक संस्कृतियों से बना एक देश लगता है। ये विविधताएँ शक्ति देती हैं। विविधताओं की अपनी विशेषताएँ हैं। विविध संस्कृतियों की अलग–अलग तरह की जीवनचर्या है। उनके साथ सदियों की सीख है। पर्यावरण और मौसम के साथ उन्होंने अपना सामंजस्य बिठाया है। और अपने–आप को उस विशेष पर्यावरण और परिस्थिति में विशेष बनाया है। परंतु इस देश ने 800 सालों का वीभत्स समय देखा है। इन 800 वर्षों में इस देश का इतिहास अपनी कला और संस्कृति को बचाने के कई प्रयासों का भी साक्षी बना है।

आश्चर्य की बात है कि आजादी से पूर्व और आजादी के बाद की स्थितियों में असामान्य अंतर आया है। एक सर्वे के मुताबिक आजादी के बाद से हमारी 220 भाषाएँ लुप्त हो गईं। यूनेस्को ने 197 भारतीय भाषाओं को लुप्तप्राय घोषित किया है। एक भाषा केवल भाषा नहीं है। बल्कि वहां रहने वाले लोगों की पहचान है, उनकी संस्कृति है। अर्थात् 1947 के बाद से हम 220 संस्कृतियों को खो चुके हैं। आज उनकी बातें भी नहीं की जाती हैं क्योंकि वह भाषा जिसके आधार पर हम संस्कृतियों की बात कर सकते हैं उनमें से 197 भारतीय भाषाएँ लुप्तप्राय हैं। देश की 22 भाषाओं को चुनकर आठवीं अनुसूची में शामिल किया गया। आश्चर्य की बात है कि उन 22 भाषाओं की स्थिति भी कुछ अच्छी नहीं है। कुछ गिनी–चुनी स्थितियां छोड़ दें तो इन भाषाओं और उनसे जुड़ी संस्कृतियों को बचाने का कोई उल्लेखनीय प्रयास भी हमें दिखाई नहीं देता है। हमें यह समझना होगा कि एक भाषा की समाप्ति केवल उस भाषा की समाप्ति ही नहीं बल्कि एक संस्कृति की समाप्ति है। वहाँ पनपे ज्ञान और कला की समाप्ति है।

एक राष्ट्र के चार स्तंभ होते हैं: संस्कृति, इतिहास, भाषा और शिक्षा। मशीनीकरण के दौर में हमारी संस्कृति को बुरी तरह से कुचला गया है। प्रचार माध्यम भी इनके खिलाफ रहा है। किसी विशेष संस्कृति और वहां की कला का विकास करने में पीढ़ियां लग जाती हैं। भाषा के प्रभावित होने से संस्कृति का इतिहास भी प्रभावित होता है। दूसरी भाषा में संस्कृति विशेष को ना तो अच्छी तरह समझ सकते हैं और ना ही स्वीकार कर सकते हैं। क्योंकि पुरानी संस्कृति भी नई भाषा को इतनी आसानी से स्वीकार नहीं करती है। भाषा भी एक संस्कृति है; इनका अपना इतिहास है। लेकिन इतिहास की भी तो भाषा है। यदि आप लिखने–पढ़ने की भाषा बदल देंगे तो इतिहास बदलना आसान हो जाएगा। यही अंग्रेजों ने किया। जिनके इतिहास की वो बात करते हैं वो नई भाषा ठीक से नहीं समझते। जब तक वह नई भाषा समझते–लिखते–पढ़ते, तब तक तो

खेल हो चुका होता था। भारत की बोलचाल और पढ़ने–लिखने की भाषा में अंतर होने के कारण भारत के इतिहास और भारत की संस्कृति के बारे में दुष्प्रचार करना आसान हो गया। और इन सब में सबसे ज्यादा प्रभाव शिक्षा से डाला गया। मैकाले की शिक्षा पद्धति में भारतीय भाषाओं को दरकिनार कर धीरे–धीरे अंग्रेजी और अंग्रेजीयत लाई गई। भाषा बदल देने से हमारे लोगों की सोच–समझ दोनों की दोनों अंग्रेजी हो गई। बाल मन को प्रभावित किया गया। हमारी भाषा ही नहीं बदली, हमारा इतिहास भी बदल गया। संस्कृतियों पर हमारे गर्व का अनुभव धीरे–धीरे समाप्त होता गया। कई छोटे–बड़े संगठन अपनी संस्कृतियों के लिए कई वर्षों तक संघर्ष करते रहे। परंतु शिक्षा को रोजगार से जोड़ा गया था कौशल से नहीं। अत: अपनी भाषा में काम करने वाले लोगों के रोजगार धीरे–धीरे समाप्त होते चले गए। कमाई का साधन समाप्त होने के साथ ही उन संगठनों को जनसमर्थन मिलना भी समाप्त हो गया। क्लर्क बनाने के लिए तय की गई शिक्षा पद्धति से जुड़कर क्लर्क बनने की होड़ लग गई। नई पीढ़ी ने अपनी संस्कृति को छोड़कर अंग्रेजी संस्कृति को अपनाना आसान समझा।

अब प्रश्न उठता है कि जो संगठन अपनी भाषा में शिक्षा देने के लिए संघर्ष कर रहे थे, छोटे स्तर पर ही सही वो अपनी भाषा में शिक्षा देने में सफल क्यों नहीं हो पाएँ? यदि वो सही होते तो सफलता उन्हें स्वयं मिलती। लेकिन मैकाले शिक्षा पद्धति की शुरुआत में ही यह तय कर लिया गया था कि केवल वही स्कूल, कॉलेज चल पाएंगे जिनकी मान्यता सरकार से दी गई हो और अभी भी ये स्थितियाँ सामान्य रूप से चल रही हैं। गुरुकुल परंपरा जो हर तरह से आपको कुशल बनाती थी, धीरे–धीरे समाप्त हो गई। परंतु ये समझना जरूरी है कि एक भाषा की समाप्ति, उसके इतिहास, उसकी संस्कृति और उसकी गर्वानुभूति की समाप्ति भी है। ये तब हुआ जब शिक्षा व्यवस्था बदल दी गई। तो सुधार के लिए फिर से हमें शिक्षा को ही माध्यम लेना होगा।

इसमें कोई दो राय नहीं है कि संस्कृति, इतिहास और भाषा सब में सामंजस्य बनाने के लिए शिक्षा जरूरी है। लेकिन शिक्षा की वह भाषा होनी चाहिए जिसे आम–जन आसानी से समझ सके। शिक्षा साध्य है और भाषा साधन। साधन कितना महत्वपूर्ण क्यों न हो साध्य से ज्यादा आवश्यक नहीं हो सकता। आप किसी विषय के कितने बड़े विशेषज्ञ क्यों न हों, परंतु अपनी बात विद्यार्थियों को समझाने के लिए आपको विद्यार्थियों के स्तर से समझाना होगा, शिक्षक के स्तर से नहीं। पिछले कई वर्षों में भारत में धारणा बन गई है कि विज्ञान विषयों को समझने के लिए आपको एक विदेशी भाषा को समझना होगा। वरना आप विज्ञान नहीं समझ सकते। तब से गणित और विज्ञान हमसे और दूर होते चले गए।

कला विज्ञान और संस्कृति का समन्वय होता है। निश्चित तौर पर भाषा विचारों के आदान–प्रदान का माध्यम ही माना जाता है। लेकिन एक क्षेत्र/ एक प्रदेश की भाषा वहां के रहने वाले नागरिक, पेड़–पौधे, जीव–जंतुओं की तरह ही उस संस्कृति, उस क्षेत्र का एक अभिन्न

हिस्सा होता है। जैसे जलवायु को बदल देने से उस जलवायु में उगने वाले पेड़-पौधों, जीव-जंतुओं का विकास रुक जाता है। ऐसा ही कुछ हमारी संस्कृतियों के साथ भी हो रहा है। एक संस्कृति की भाषा बदल देने से कला-संस्कृति-सभ्यता सब धीरे-धीरे समाप्त हो रही है। उसे वह अपनापन नहीं मिलता जो एक निश्चित भाषा से उसे मिलता था। वहां की भाषा की समाप्ति के बाद वहां के लोगों में भी हीनता की भावना आने लग जाती है और स्वाभिमान से परे आत्महीन व्यक्ति से आप बड़े आविष्कारों की उम्मीद नहीं कर सकते। अहम् ब्रह्मास्मि का मूल वाक्य ही आविष्कारों के लिए विश्वास देता है। भाषा की अपनी संस्कृति है, संस्कृति की अपनी भाषा है; दोनों एक दूसरे से गुथे हुए हैं।

बात करें वैज्ञानिक आविष्कारों की तो मेरा मानना है कि स्थिति भयंकर है। वैज्ञानिक आविष्कार आपकी सामान्य चेतना से जुड़ी होती है जो कि दिन-ब-दिन बोल-चाल, देख-रेख की स्थितियों से आती है। आप पढ़ने लिखने की भाषा बदल सकते हैं, सोच की भाषा नहीं बदल सकते। एक अच्छा आविष्कार एक विषय पर वर्षों तक के सोच-विचार का परिणाम होता है। अगर भारत में होने वाले आविष्कारों को हम गौर से देखते हैं तो पाते हैं कि ज्यादातर आविष्कारों की पृष्ठभूमि भारतीय नहीं है। या यूं कहें कि हमें जिन आविष्कारों की अत्यंत आवश्यकता है हम उन्हें छोड़कर उन विषयों पर ज्यादा आविष्कार करते हैं जिनकी पश्चिमी देशों को ज्यादा जरूरत है। मूल कारण उनकी भाषा में उनकी समस्या को पढ़ना-लिखना है। हम अपनी शिक्षा को, अपने आविष्कारों को अपने देश के दैनिक जरूरत से जोड़ नहीं पा रहे हैं। इसका मूल कारण वैज्ञानिक शिक्षा में हमारी मूल भाषा मातृभाषा/राजभाषा/राष्ट्रभाषा का ना होना है।

भारत में कई संस्कृतियों, कई भाषाओं का सामंजस्य है। इसीलिए भारत में एक तरह की शिक्षा एक भाषा में तय करना एक कठिन कार्य है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक भाषा की अपनी गर्वानुभूति भी है। दक्षिण और उत्तर में भाषा को लेकर लड़ाई पुरानी है। और जहां की जो भाषा नहीं है वहां शिक्षा दूसरी भाषा में देना वहां के लोगों के साथ अन्याय भी है। किसी विषय की अपनी कोई भाषा नहीं होती। सीखने की भाषा वही होती है जिसे आप सबसे ज्यादा उपयोग करते हैं। तो देश के उत्तरोत्तर विकास के लिए यह जरूरी है की शिक्षा की भाषा वह मूल भाषा हो जिसमें कि वहां के व्यक्ति आपस में बातचीत करते हैं।

हमारे देश की विडंबना तो देखिए एक छोटे बच्चों को नर्सरी में प्रवेश दिलाने के लिए भी उन्हें याद दिलाने की आवश्यकता पड़ती है व्हाट इज योर नेम? जिसका उत्तर उसे करना है माय नेम इस...। जबकि उस बच्चे से उसकी भाषा में उसका नाम पूछें वो बच्चा सवाल समझ कर आसानी से जवाब दे सकता है। यहाँ बताया गया कि नाम से ज्यादा जरुरी वो भाषा है जिसमें हम जवाब सुनना चाहते हैं। हमने वहीं से अपने बच्चों की व्यावहारिक बुद्धि समाप्त कर

दी। जड़ से अलग हुए पौधे के विकास की आप कितनी उम्मीद करेंगे? जिन्हें अपने दिमाग का उपयोग करने के लिए आपने बचपन से रोक दिया वो क्या अन्वेषण करेंगे? ये तो तोते होंगे। परीक्षा से पहले 10 बार डरेंगे। जीवन की असली परीक्षा में पता नहीं कैसा नतीजा दे पाएंगे? इनसे किसी वैज्ञानिक खोज या अन्वेषण की आप उम्मीद नहीं कर सकते। सर आइजैक न्यूटन ने कहा था कि मुझे लगता है कि आम आदमियों से मेरा दिमाग धीमा चलता है, परन्तु विशेष बात यह है कि मैं एक विषय पर लम्बे समय तक सोच सकता हूं। गुरुत्वाकर्षण का सिद्धांत देने से पहले उन्होंने इस विषय पर 20 वर्षों तक सोचा, अध्ययन किया, तब जाकर गुरुत्वाकर्षण का सिद्धांत दे पाए। अर्थात् विज्ञान में पढ़ने–लिखने की भाषा से अधिक आवश्यक सोचने–समझने की भाषा होती है। अगर पढ़ने–लिखने की भाषा, सोचने–समझने की भाषा से अलग होगी तो आप अन्वेषण की ज्यादा उम्मीद नहीं रख सकते। आपको कठिन चीजों को भी आसान बनाना होगा। इतना आसान कि विज्ञान आपके दैनिक कर्म का हिस्सा बन जाए। तब वैज्ञानिक खोज या अन्वेषण आपकी दिनचर्या का हिस्सा हो जाएगा। 50 वर्षों में हमने शिक्षा का वह स्वरूप देखा है जहां गणित और विज्ञान से ज्यादा आवाश्यक अंग्रेजी हुआ करती थी, या हुआ करती है। हिन्दी भाषी विद्यार्थियों का स्वाभिमान बुरी तरह से कुचला गया और जो विद्यार्थी हिन्दी भाषी नहीं थे उनकी पीड़ा तो इससे भी कहीं ज्यादा थी। न तो अपनी बात को अंग्रेजी में ठीक से रख सकते थे, न हिन्दी में रख सकते थे। छोटे–छोटे कार्यों में, छोटी–छोटी नौकरियों में उन्हें बड़ा संघर्ष करना पड़ता था। इन संघर्षों से निपटना जरूरी था। तो उन्होंने अंग्रेजी अपना लिया।

भारत तो वैसे भी विज्ञान का देश रहा है। यहां का योग, यहां का ज्योतिष, यहां का आयुर्वेद... इनकी पूरी दुनिया में कोई तुलना नहीं है। ऐसा इसलिए था क्योंकि विज्ञान की हमारी समझ हमारे पर्यावरण ने दी थी। भारत ऐसा देश है जहां सूर्य का प्रकाश और वायु में ऑक्सीजन प्रचूर मात्रा में है। ये दोनों मस्तिष्क को सुचारू रूप से चलाने के लिए आवश्यक हैं। तो हमारा दिमाग बाकी कई देशों में रहने वाले लोगों के दिमाग से तेज चलता है, बेहतर चलता है और वैज्ञानिक शोधों में इसीलिए हमें बेहतर होना चाहिए था। पूर्व में हम थे, परंतु कम से कम पिछले 800 वर्षों में तो हम इस गर्व को प्राप्त करने के अधिकारी नहीं रहे हैं। केवल इतिहास पर गर्व कर लेने से वर्तमान की समस्याएं समाप्त नहीं होंगी। हमें अपने विषयों पर, अपनी समस्याओं पर गहन शोध करना होगा।

शोध बताते हैं कि भारत के 85% इंजीनियर नौकरी योग्य नहीं है। भारत में शिक्षित बेरोजगारों की एक लंबी कतार है। जबकि यह वही भारत है जो दुनिया का सबसे बड़ा बाजार बन रहा है। पूरी दुनिया यहां के बाजार को उम्मीद से देख रही है और जब बाजार इतना बड़ा है तब इतनी बड़ी संख्या में शिक्षित बेरोजगार चिंता का विषय अवश्य हैं। चूंकि ये पढ़े–लिखे हैं तो निश्चित तौर पर इसका कारण भी शिक्षा देना या शिक्षा देने की व्यवस्था में ही होगा। व्यावहारिक

ज्ञान का अभाव एक कारण है। परन्तु पढ़ना, लिखना, समझना और अनुसंधान करना फिर उन्हें लिखना इन सब की भाषा में अंतर है। जो अन्वेषण को अत्यंत कठिन बना देती है। ऊँची कक्षाओं में अपनी भाषा में किताबें मिलना इतना कठिन है कि हमारे यहां के विद्यार्थी अपना एक–दो साल बर्बाद करके अंग्रेजी में पहले अपने आप को सहज बनाते हैं। विज्ञान के अधिकतम विद्यार्थी इस दर्द से गुजरे हैं। पढ़ाई हमारी भाषा में नहीं होती। इंटरव्यू हमारी भाषा में नहीं होते। लेकिन बाजार आमजन की भाषा में चलनी है। आत्महीन लोगों के बाजार को कौन चलाएगा? आत्महीन व्यक्ति ही बार–बार बिकेगा। वह बाजार के दिखाएं सपने खरीदेगा जिन वस्तुओं की अधिकतर उन्हें कोई आवश्यकता नहीं होती।

मैंने कई वैज्ञानिक संगोष्ठियां देखी हैं। वहां बैठा हर एक व्यक्ति हिन्दी भाषी है। लेकिन तमाम शोध पत्र अंग्रेजी में पढ़े जाएंगे। प्रत्येक व्यक्ति के लिए वह शोध पत्र हिन्दी में सुनना और समझना आसान है। लेकिन वहां शोध से ज्यादा महत्वपूर्ण शोध प्रस्तुत करने वाले की अंग्रेजी की जानकारी है। वहां विषय का महत्व कमतर हो जाता है। परिणाम यह होता है कि ज्यादातर संगोष्ठियां उबाऊ हो जाती है। और इस तरह संगोष्ठियां जिस वजह से होती हैं, उसकी आवश्यकता को वह पूरी नहीं कर पाती।

हमारी शिक्षा पद्धति में परीक्षाओं का बड़ा महत्व है। एक वर्ष की पढ़ाई हम तभी पूरी मानते हैं जब उस वर्ष के अंत में हुई परीक्षा विद्यार्थी उत्तीर्ण कर लेता है। लेकिन जब पढ़ाई की भाषा उसकी अपनी नहीं होती, परीक्षा में उत्तर लिखने की भाषा अपनी नहीं होती तो निश्चित तौर पर परीक्षा का डर विद्यार्थियों में समा जाता है। ऐसा लगता है कि अपनी बात किसी दूसरी दुनियाँ को समझाना है। जब सोचने–समझने और लिखने–पढ़ने की भाषा एक नहीं होती तो परिणामस्वरूप पता चलता है कि 85% से अधिक भारतीय छात्र रोजगार के योग्य नहीं है। आधे से कम भारतीय स्नातक कुशल है। इसके दो कारण हैं: एक तो हमारी शिक्षा प्रयोगात्मक नहीं है जिसकी वजह से यह माना जाता है कि भारतीय इंजीनियर रोजगार की योग्य नहीं है और दूसरा, हमारी शिक्षा इतनी सहज नहीं है कि विद्यार्थी अपने कौशल का वहां पर प्रयोग कर सके। हमें शिक्षा में सहज होने की जरूरत है।

एक नई शिक्षा पद्धति लाने की आवश्यकता थी और इसी आवश्यकता को समझते हुए राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 के तहत छात्रों को उनकी मातृभाषा में पढ़ने की सिफारिश की गई। राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 के अनुसार, 'भारतीय संस्कृति विज्ञान और आध्यात्म का एक समृद्ध भंडार है, जो निसंदेह भाषा, कला और संस्कृति से अटूट रूप से जुड़ा हुआ है। हर कला, हर संस्कृति में विज्ञान का अभूतपूर्व जोड़ है। भाषा प्रासंगिक और जीवंत बनी रहे इसके लिए इन भाषाओं में उच्च गुणवत्तापूर्ण अधिगम एवं प्रिंट सामग्री का सतत प्रवाह बने रहना चाहिए।' यह बातें सुनने में तो बड़ी अच्छी लगती हैं कि हमें अपनी मातृभाषा में पढ़ने की जरूरत है लेकिन मातृभाषा में विज्ञान की पुस्तके हैं कितनी? हमारी पीढ़ी के अधिकतम विद्यार्थियों ने इस कष्ट

को झेला है। हर विद्यार्थी को अपना एक–दो वर्ष खराब करना पड़ा है। कारण यही था (और आज भी कमोबेश है ही) कि प्रिंट सामग्री या पुस्तक हमारी भाषा में ठीक से उपलब्ध नहीं थे। हालांकि समय बदलने के साथ किताबों को अनूदित करना आसान हो गया और इसीलिए यह कहना गलत नहीं होगा कि आज हर भाषा, हर विषय में पुस्तकों को बना पाना इतना कठिन कार्य नहीं है। जरूरत है कि प्रादेशिक भाषा में कुशल शिक्षक हों, जिसकी अभी हमारे देश में कमी दिखाई देती है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 कहती है कि भारतीय भाषाओं में विभिन्न पाठ्यक्रमों को डिजाइन करना होगा और उन भाषाओं में पढ़ाने वाले शिक्षक और पाठ्य पुस्तकों को तैयार करना होगा। उत्तर से उच्चतर शिक्षण संस्थानों और उच्चतर शिक्षा के और अधिक कार्यक्रमों में मातृभाषा या स्थानीय भाषा को शिक्षा के माध्यम के रूप में उपयोग किया जाएगा। विशेष तौर पर जो अत्यंत अनिवार्य पुस्तक हैं उनका अनुवाद और उनकी विवेचना को महत्व दिया जाएगा। इसी नीति में कहा गया है कि इंडियन इंस्टीट्यूट आफ ट्रांसलेशन एंड इंटरप्रिटेशन को खोला जाएगा जो इस कार्य को आसान बनाएगी।

इतनी बातों को सोचने–समझने में कोई परेशानी नहीं है। सब कुछ अच्छा व विश्वसनीय लगता है। निश्चित तौर पर पढ़ने की भाषा वही होनी चाहिए जो विद्यार्थियों के बोलने की भाषा है। सीखने की भाषा अलग से नहीं थोपी जा सकती और जब हम ऐसा करेंगे तो कई लाभ होंगे। जैसे अधिक से अधिक छात्र उच्च शिक्षा से जुड़ेंगे। उनके लिए चीजों को सीखना आसान होगा। व्यावहारिक ज्ञान में वृद्धि होगी और जब शिक्षा बढ़ेगी, व्यावहारिक ज्ञान में वृद्धि होगी तो कला और संस्कृति को भी इसे आसानी से जोड़ा जा सकेगा। शिक्षा के बाद वह अपनी कला–संस्कृति को और बेहतर कर सकते हैं और साथ में उसे संरक्षित भी रख सकते हैं। उसके महत्व को समझ सकते हैं। और सबसे बड़ी बात कि हमारी मातृभाषा और क्षेत्रीय भाषा के प्रति हम सब का सम्मान बढ़ेगा।

यह बड़ी अच्छी शुरुआत है। लेकिन कुछ खामियां भी हैं और इन खामियों पर काम कर लेना जरूरी है। कमियों को समझना जरूरी है। जो पहली बात विरोध में कही जाती है कि नई शिक्षा नीति या राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 बड़ी अव्यावहारिक है क्योंकि भाषा या संस्कृति भारत में एक या दो तो है नहीं। हर 50-100 किलोमीटर में कई बार भाषा बदल जाती है। आप शिक्षा नीति में कितनी भाषाओं को जोड़ पाएंगे और एक भाषा को आपने महत्व दिया दूसरी को नहीं दिया तो नए तरह के विवाद, नए तरीके की समस्या खड़ी हो सकती है। हालांकि फिलहाल सरकार ने 22 भाषाओं में अपनी तैयारी करनी शुरू की है, लेकिन यह तैयारी थोड़ी पहले से होनी चाहिए थी। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 लागू हो चुकी है। हम क्षेत्रीय भाषा में पढ़ा तो लें, लेकिन पाठ्यपुस्तक तैयार नहीं है। कहा गया था कि यूजीसी की वेबसाइट पर पुस्तकें मुफ्त में

उपलब्ध होंगी, लेकिन उपलब्ध पुस्तकें नाकाफी हैं। लेखक/शिक्षक जिन्हें इन पुस्तकों को तैयार करने के लिए जोड़ा जा रहा है, उन्हें न तो पर्याप्त मानदेय मिल रहा है और न ही पर्याप्त मान्यता दी जा रही है। काम की तैयारी से पहले हम एक विशाल सागर में कूद नहीं सकते। डूबने का डर होगा। तैयारी की अभी भी कमी है। शिक्षा में एकरूपता भी रहना चाहिए। एक परीक्षा से हर भाषा में रोजगार के अवसर दे पाना मुश्किल है। आज दक्षिण का एक विद्यार्थी उत्तर में नौकरी कर सकता है, पूर्व का विद्यार्थी पश्चिम में नौकरी कर सकता है। जब शिक्षा की भाषाओं का अंतर होगा तो सामाजिक एकता से जोड़ने के लिए ये जो कड़ियां हैं, वे टूटने लग जाएंगी। मध्य प्रदेश का एक लड़का जब ऐसी जगह पर जाएगा जहां केवल तमिल और तेलुगू में पढ़ा-पढ़ाया जाता है या कार्य करने की भाषा तमिल या तेलुगू है तो उसके लिए कार्य करना कठिन हो जाएगा और एक भाग से दूसरे भाग के लोगों में दूरियाँ होना संभव है। संस्कृतियों का मेल-मिलाप कठिन होता चला जाएगा और फिर क्या होगा? क्या इसका कोई दुष्प्रभाव नहीं होगा? इस पर विशेष ध्यान देने की जरूरत है। वरना आने वाले समय में मुश्किल में पड़ सकते हैं। और मान लीजिए ऐसा नहीं होता तो ठीक है प्रारंभिक शिक्षा में तो इतनी परेशानी नहीं आएगी। लेकिन जब उच्च शिक्षा की हम बात करते हैं। जब विश्वविद्यालय की बात करते हैं तो देश के अलग-अलग जगह से लोग आ सकते हैं। वहां आप कितनी भाषा में पढ़ेंगे? एक भाषा तो तय करनी पड़ेगी। वह तय भाषा देशी होगी या विदेशी? अब आप शिक्षकों के बारे में सोचिए जिनकी एक ही क्लास रूम में 20 अलग-अलग भाषाओं के विधार्थी बैठे हों और वे केवल अपनी भाषा समझते हों, तो उन पर कितना दबाव होगा? वह किस तरीके से पढ़ाएंगे?

यह सबकुछ इतना आसान नहीं है। ऐसी स्थितियों से निबटने के लिए शिक्षकों को अत्यधिक ट्रेनिंग की जरूरत है। आने वाले समय में कठिनाइयाँ भी आएंगी। लेकिन शिक्षा व्यवस्था को विधार्थी केंद्रित होना चाहिए और इस रास्ते में थोड़ी कठिनाई आती है तो हमें सामना करना चाहिए। जैसे-जैसे समस्याएँ आएँगी, हम सीखेंगे भी। हम बेहतर, और बेहतर होंगे। राष्ट्रीय शिक्षा नीति तभी सफल हो पाएगी जब छोटे-छोटे अनुशासनों में कार्य कर पाए। गुरुकुल की तरह की व्यवस्था हो। जहां विद्यालय या विश्वविद्यालय में एक जैसे लोग ही हों। आने वाला समय हमें अभी बहुत सिखाने वाला है।

सहायक प्राध्यापक, रसायनशास्त्र विभाग
डॉक्टर हरीसिंह गौर केन्द्रीय विश्वविद्यालय
सागर (म.प्र.)

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 के भाषायी सरोकार और राजभाषा हिन्दी

– डॉ. हिमांशु कुमार

21वीं शताब्दी में भारत की स्कूल और कॉलेज की शिक्षा को अधिक समग्र एवं लचीला बनाने, एक जीवंत ज्ञानात्मक समाज का निर्माण करने, भारत को वैश्विक महाशक्ति में बदलने तथा देश के प्रत्येक छात्र में निहित अद्वितीय क्षमताओं को सामने लाने के उद्देश्य से राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 निर्मित हुई है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 एक ऐसा विजन अभिलेख है, जिसमें आत्मनिर्भर भारत के निर्माण हेतु भारतीय शिक्षा के भविष्य की असीम सम्भावनायें छिपी हुई हैं। रोजगार, सामाजिक उन्नयन, शोध एवं अनुसंधान की दृष्टि से राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 की संस्तुतियाँ अत्यन्त उपयोगी हैं। इसमें भारतीय भाषाओं को लेकर प्रगतिगामी दृष्टि से समग्रतः विचार किया गया है। बहुभाषिकता और अध्ययन–अध्यापन के कार्य में भाषा की शक्ति को प्रोत्साहन ही इसका मुख्य उद्देश्य है। इसमें स्कूली शिक्षा से लेकर उच्च शिक्षा तक में भारतीय भाषाओं के अध्ययन के साथ भारतीय भाषाओं में अध्यापन पर बल दिया गया है। इसमें अनुशंसा की गई है कि जहाँ तक सम्भव हो, कम से कम ग्रेड 5 तक तथा यह और बेहतर होगा कि यह ग्रेड 8 और उससे आगे तक भी हो– शिक्षा का माध्यम घर की भाषा/मातृभाषा/स्थानीय भाषा/क्षेत्रीय भाषा होगी।

हम जानते हैं कि किसी भी व्यक्ति के लिए मातृभाषा में सीखना आसान होता है, क्योंकि इसमें सम्प्रेषण सहज संभाव्य होता है। कोई भी बच्चा अपनी मातृभाषा में चीजों को आसानी से समझ लेता है, जबकि अन्य भाषाओं में उसे रटना पड़ता है। दुनिया के अधिकांश विकसित देशों जैसे कि अमेरिका, इंग्लैण्ड, फ्रांस, इटली, जर्मनी, कोरिया, जापान, चीन, इत्यादि में स्कूली शिक्षा का माध्यम मातृभाषा या स्थानीय भाषा है। समझा जा सकता है कि एनईपी 2020 के भाषायी सरोकार कितने बड़े हैं। इसमें उच्च शिक्षा के अधिकतर डिग्री पाठ्यक्रमों को भारतीय भाषाओं या द्विभाषी रूप में पढ़ाये जाने की सिफारिश की गई है, जो एक अच्छा कदम है। इसी का परिणाम है कि भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थानों, राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी संस्थानों तथा कई चिकित्सा संस्थानों की पढ़ाई मातृभाषा में कराने पर काम किया जा रहा है। नये पाठ्यक्रम अब मातृभाषा/स्थानीय भाषा में तैयार कराये जा रहे हैं। शिक्षकों की नियुक्तियों में भी ऐसे कौशल वालों को प्राथमिकता मिल रही है। जेएनयू, नई दिल्ली जैसे संस्थान हिंदी में गैर तकनीकी पाठ्यक्रम शुरू करने की पहल कर चुके हैं। आईआईटी–जेईई एवं नीट यानी मेडिकल प्रवेश परीक्षा अंग्रेजी के साथ हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाओं में आयोजित की जा रही है। भारतीय भाषाओं में उच्च शिक्षा की संभावनाओं को सही स्वरूप देने के लिए गुणवत्ता

पूर्ण शिक्षण सामग्री (लिखित एवं दृश्य–भव्य) तैयार करायी जा रही है, जिसके लिए एनईपी 2020 में इंस्टीट्यूट ऑफ ट्रांसलेशन एण्ड इंटरप्रिटेशन की स्थापना का प्रावधान किया गया है। संविधान की आठवीं अनुसूची में उल्लिखित सभी भाषाओं की अकादमी बनाने की बात भी एनईपी 2020 करती है। महत्वपूर्ण यह भी है कि हाई कोर्ट और सुप्रीम कोर्ट के निर्णय अब हिन्दी में भी उपलब्ध कराने की बात हो रही है। वस्तुतः भाषायी स्तर पर एनईपी बहुत लोकतांत्रिक है। जो भाषायें बहुत कम बोली जाती हैं, उनके प्रति भी यह संवेदनशील है। एनईपी 2020 में इस बात की भी उद्घोषणा है कि आदिवासी और विलुप्त हो रही भाषाओं के संवर्धन के लिए प्रौद्योगिकी के माध्यम से विशेष प्रयास किया जायेगा। इसके साथ ही एनईपी 2020 सभी भारतीय भाषाओं और उनसे संबंध रखने वाली स्थानीय कला एवं संस्कृति के संरक्षण के लिए वेब आधारित प्लेटफार्म तथा पोर्टल इत्यादि के माध्यम से उनके दस्तावेजीकरण की बात भी करती है। कहना न होगा कि एनईपी 2020 के प्रयास भारतीय भाषाओं एवं संस्कृति के लिए बहुत मूल्यवान साबित होंगे।

एन.ई.पी. 2020 में त्रिभाषा सूत्र पर नये सिरे से विचार किया गया है, जिससे कि बहुभाषावाद एवं राष्ट्रीय एकता को बल मिले। किसी भी बच्चे के संज्ञानात्मक विकास की दृष्टि से भाषा सीखना एक महत्वपूर्ण कदम है। इससे बहुउद्देश्यीयता एवं राष्ट्रीय सद्भाव की पूर्ति होती है। त्रिभाषा सूत्र का उद्देश्य इस बात को सुनिश्चित करना है कि हिन्दी और गैर हिन्दी राज्यों में भाषा का अंतर समाप्त हो। बहुभाषिकता की दृष्टि से हिंदीतर राज्यों में हिन्दी की स्थिति को देखकर एनईपी 2020 में हिन्दी के महत्व को रेखांकित करने का प्रयास भी किया गया है। इसका उद्देश्य है कि हिंदीतर राज्यों में देश की संपर्क भाषा हिंदी बनकर उभरे जो संघ या केन्द्र सरकार की राजभाषा है और यह भी सुनिश्चित हो कि हिंदी भाषी राज्य के लोग संस्कृत के साथ किसी अन्य हिंदीतर राज्य की भाषा अपनायें। पूरे भारत में उत्तर से दक्षिण तक समस्त भारतीय भाषाओं को जोड़ने में संस्कृत का महत्वपूर्ण योगदान है। एनईपी इसको लेकर भी सजग है। स्कूली शिक्षा के साथ उच्च शिक्षा में भी संस्कृत भाषा के अध्ययन की बात इसमें कही गई है। एनईपी 2020 विदेशी भाषाओं के अध्ययन को लेकर वैश्विक दृष्टि की हिमायती है, इसलिए वह सेकंडरी स्तर से ही उसके अध्ययन की बात करती है। कहना न होगा कि एक भारत, श्रेष्ठ भारत का आधार भारतीय भाषाओं के सशक्तिकरण में ही निहित है।

वस्तुतः राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के भाषायी सरोकार को समझना इसलिए जरूरी है कि हम यह निर्णय कर सकें कि मनुष्य एवं समाज के उत्थान के लिए भाषा कैसे अपनी भूमिका अदा करती है। बहुभाषिकता से आच्छादित भारत देश कैसे भाषाओं के सामंजस्य के साथ निरंतर प्रगति के पथ पर अग्रसर है? भारतीय भाषाओं के इस सन्दर्भ में हमारी हिन्दी और राजभाषा हिन्दी की क्या जगह है? इसके लिए राजभाषा हिन्दी को समझना भी जरूरी हो जाता है।

राजभाषा हिन्दी की जब हम बात करते हैं तो राजभाषा और हिन्दी दो शब्द हमारे जेहन में उभरते हैं। हिन्दी से सभी भली भाँति परिचित हैं। प्रश्न है राजभाषा क्या है? इसके लिए सबसे पहले भाषा को समझना जरूरी है। सामान्य रूप से भाषा उन सभी माध्यमों का बोध कराती है जिनसे मनुष्य भावाभिव्यंजन का काम लेते हैं। अर्थात् भाषा विचार–विनिमय का साधन है। पशु–पक्षियों की बोली भी भाषा है, इंगित भी भाषा है, सड़क की लाल–हरी बत्ती भी भाषा है और मनुष्य जो बोलता है, वह भी भाषा है। भाषा के विभिन्न रूपों में राजभाषा भी उसका एक रूप है। राजभाषा का सीधा सा अर्थ है राजकाज की भाषा। किसी भी प्रजातांत्रिक देश में राजकाज की भाषा वहाँ की जनता की भाषा होती है। राजभाषा औपचारिक माध्यम के रूप में प्रशासन और प्रशासित के बीच सेतु का काम करती है। वह राज्य के अथवा देश के बहुतायत लोगों द्वारा बोली, लिखी और समझी जाती है। राजभाषा अपनी प्रकृति में बहुत नीरस और सूचना प्रधान होती है, अपनी अभिव्यक्ति में यांत्रिक और संवेदनशून्य होती है। राजभाषा का अस्तित्व शासन करने की शक्ति पर, सत्ता पर निर्भर करता है। इसका सरोकार प्रशासकों और राजकर्मियों से होता है।

भारत के संविधान द्वारा हिन्दी राजभाषा के पद पर आसीन है। लगभग 200 वर्षों के लम्बे ब्रिटिश शासन से मुक्ति पाने के बाद भारत के संविधान को 26 नवम्बर 1949 को स्वीकार किया गया तथा 26 जनवरी 1950 को उसे लागू किया गया। 14 सितम्बर 1949 के दिन भारतीय संघ की राजभाषा के रूप में हिन्दी को स्वीकार किये जाने का निर्णय संविधान सभा द्वारा किया गया था। इसीलिए प्रतिवर्ष 14 सितम्बर को भारत भर में 'हिन्दी दिवस' का आयोजन किया जाता है।

संघ सरकार के राजकाज के कार्य तथा केन्द्र एवं राज्यों के बीच सम्पर्क भाषा की भूमिका निभाने का उत्तरदायित्व हिन्दी को सौंपा गया है, क्योंकि इसे भारत देश के अधिकांश लोग बोलते और समझते हैं तथा यह भारत की धार्मिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक पम्पराओं से जुड़ी हुई है।

राजभाषा हिन्दी के लिए कुछ संवैधानिक प्रावधान किये गये हैं, जिसको जानना अत्यावश्यक है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 343(1) के अनुसार संघ की राजभाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी होगी। संघ के राजकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग होने वाले अंकों का रूप भारतीय अंकों का अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप होगा। इसी में (2) खण्ड में यह व्यवस्था भी की गई है कि संविधान के लागू होने के समय से 15 वर्ष की अवधि तक अर्थात् सन् 1965 तक संघ के सभी सरकारी कार्यों के लिए पहले की भाँति अँग्रेजी भाषा का प्रयोग होता रहेगा।

वस्तुतः यह व्यवस्था इसलिए की गई थी कि इस बीच हिन्दी न जानने वाले हिन्दी

सीख जायेंगे और हिन्दी भाषा प्रशासनिक कार्यों के लिए सक्षम बन सकेगी। पर अफसोस है कि आज भी हिन्दी–अँग्रेजी का द्वन्द्व बरकरार है। अनेक अवांछित कारणों और कटु कारकों के चलते यह संभव नहीं हो सका है।

अनुच्छेद 344(1) में कहा गया है कि राष्ट्रपति इस संविधान के प्रारम्भ से पाँच वर्ष की समाप्ति पर (अर्थात् 26 जनवरी 1955 ई.) और तत्पश्चात् ऐसे प्रारंभ से दस वर्ष की समाप्ति पर आदेश द्वारा एक आयोग का गठन करेंगे। इस आयोग में एक अध्यक्ष तथा आठवीं अनुसूची में बताई गई विभिन्न भाषाओं का प्रतिनिधित्व करने वाले ऐसे अन्य प्रतिनिधि होंगे, जिन्हें राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किया जायेगा। राष्ट्रपति के इस आदेश में आयोग द्वारा अपनायी जाने वाली प्रक्रिया भी निर्दिष्ट की जायेगी। और भी बहुत सी बातों के साथ अनुच्छेद 345, 346, 347, 348, 349, 350 इत्यादि के द्वारा भी बहुत से प्रावधान किये गये। संविधान का अनुच्छेद 351 अत्यन्त महत्वपूर्ण है, क्योंकि इसके अनुसार राजभाषा हिन्दी के बहुमुखी विकास तथा प्रचार–प्रसार का कानूनी दायित्व संघ की केन्द्र सरकार को सौंपा गया है। और किस प्रकार हिन्दी को विकसित करना है, इसके भी स्पष्ट निर्देश उक्त अनुच्छेद में दिये गये हैं। अपेक्षित परिणाम नजर न आने की वजह से 1963 में राजभाषा अधिनियम बनाया गया, ताकि संघ के राजकाज में हिंदी के प्रयोग को अमल में लाया जा सके। राजभाषा अधिनियम 1963 की धारा 3(3) में यह आदेशपूर्वक निर्दिष्ट किया गया कि सर्वसाधारण को लक्ष्य कर तैयार किये जाने वाले सभी दस्तावेज नामतः आदेश, ज्ञापन, परिपत्र, सूचना, अधिसूचना, विज्ञापन, निविदा, संविदा, अनुज्ञप्ति, करार, संसद के दोनों सदनों में पेश किये जाने वाले प्रशासनिक और अन्य प्रतिवेदन आदि अंग्रेजी के साथ–साथ अनिवार्यतः हिन्दी में भी जारी किये जायें। अर्थात् ये सभी सरकारी दस्तावेज अनिवार्यतः द्विभाषी रूप में ही जारी किये जायें और इसका दृढ़तापूर्वक पालन सुनिश्चित किया जाय। इसका उल्लंघन होने पर इन दस्तावेजों पर अन्तिम रूप से हस्ताक्षर करने वाले अधिकारी को जिम्मेदार ठहराया जायेगा। कहना न होगा कि संघ की राजभाषा नीति के सतत् क्रियान्वयन में यह एक महत्वपूर्ण पड़ाव था। फिर राजभाषा अधिनियम 1976 में संपूर्ण भारत के राज्यों को भाषा की दृष्टि से तीन क्षेत्रों में विभाजित किया गया। 'क' क्षेत्र अर्थात् हिन्दी भाषी राज्य जिसमें बिहार, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, मध्यप्रदेश, राजस्थान, उत्तर प्रदेश तथा दिल्ली संघ राज्य क्षेत्र सम्मिलित हैं। 'ख' क्षेत्र अर्थात् हिन्दी स्वीकार करने वाले राज्य जिन्होंने हिंदी को अपनी पत्र व्यवहार की भाषा के रूप में स्वीकार किया है। इनमें गुजरात, महाराष्ट्र, पंजाब तथा चंडीगढ़ और अंडमान निकोबार द्वीप समूह सम्मिलित हैं। 'ग' क्षेत्र अर्थात् अन्य सभी राज्य जिनमें कार्यालयों को पत्रादि अँग्रेजी में भेजे जायेंगे। इसके अलावा राजभाषा संकल्प 1968 भी महत्वपूर्ण कड़ी है, राजभाषा हिन्दी के प्रगामी प्रयोग को बढ़ावा देने के लिए। साथ ही साथ

भारतीय संविधान में राजभाषा के बारे में किये गये प्रावधानों के अन्तर्गत संघ की राजभाषा के रूप में हिन्दी के प्रगामी प्रयोग से सम्बन्धित राष्ट्रपति ने सन् 1952, 1955 तथा 1960 में आदेश निकाले हैं, जिनका इस दृष्टि से अप्रतिम महत्व है।

इन सभी के परिणामस्वरूप ही सरकारी कार्यालयों में हिंदी अनुवादकों और राजभाषा अधिकारियों की भूमिका महत्वपूर्ण हो गयी। संसद के दोनों सदनों समेत सभी मंत्रालयों, विभागों, कार्यालयों, अधीनस्थ कार्यालयों, निगमों, उपक्रमों, बैंकों और सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयों आदि में हिन्दी अनुवादक और राजभाषा अधिकारी की नियुक्ति को बल मिला, जिससे राजभाषा नीति के कार्यान्वयन में सहूलियत हो सके। इससे राजभाषा नीति के कार्यान्वयन की आंशिक पूर्ति तो अवश्य हुई। कार्यालयों में रोजमर्रे के कामकाज और पत्राचार, टिप्पण, प्रविष्टि आदि हिंदी में करने का दबाव बढ़ा और कार्यालयों के नाम, नामपट्ट, सूचना–पट्ट, मोहर, सील पत्र शीर्ष, लिफाफे आदि ही नहीं बल्कि फर्मों–पर्चियों आदि समेत रेलवेज, एयरवेज आदि के आरक्षण फार्म, टिकट, बैंकों की निकासी व जमा पर्चियाँ, चेकबुक, पासबुक इत्यादि भी हिंदी में प्रदर्शित, प्रकाशित और मुद्रित होने लगे। इतना ही नहीं समस्त भर्ती परीक्षाओं के प्रश्न–पत्र भी अंग्रेजी के साथ–साथ हिन्दी में अनिवार्यतः तैयार किये जाने लगे और इन भर्तियों के लिए आयोजित होने वाले साक्षात्कारों में भी हिंदी में उत्तर देने का प्रावधान किया गया। कुल मिलाकर यह कि हिन्दी को अब वरीयता मिलने लगी। वस्तुतः संघ की राजभाषा नीति बेहद संवेदनशील और सर्वसमावेशी है और यहाँ किसी भी भाषा को कमतर या बेहतर नहीं बताया गया है। आज हिंदी का हर क्षेत्र में प्रयोग, संघ की इसी राजभाषा नीति का परिणाम है। संघ की राजभाषा नीति के कार्यान्वयन में हुई प्रगति संतोषजनक ही नहीं बल्कि पर्याप्त उत्साहजनक प्रतीत होती है।

राजभाषा हिन्दी के सही कार्यान्वयन के लिए हमें कार्यालयों, मंत्रालयों, विभागों, निगमों, बैंकों इत्यादि में होने वाले पत्राचार, आदेश, कार्यालय, ज्ञापन, अनुस्मारक, अर्द्धशासकीय पत्र, पृष्ठांकन, अधिसूचना, संकल्प, प्रेस विज्ञप्ति, द्रुतपत्र, सूचना, घोषणा, परिपत्र, प्रतिवेदन, संक्षेपण, प्रारूपण, विज्ञापन इत्यादि से सम्बन्धित महत्वपूर्ण तत्वों से परिचित होना पड़ेगा। इसकी सही जानकारी से ही हम हिन्दी के प्रगामी प्रयोग को बढ़ावा देने में सहायक सिद्ध होंगे। यहीं यह भी महत्वपूर्ण है कि हमें पारिभाषिक शब्दावली (Technical Terminology) से भी परिचित होना होगा। क्योंकि हिन्दी के विभिन्न प्रयोजनों में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका है। पारिभाषिक शब्दावली किसी ज्ञान विशेष के क्षेत्र में एक निश्चित अर्थ में प्रयुक्त होती है। पारिभाषिक का सीधा अर्थ है। जिसकी सीमायें बाँध दी गई हैं। ज्ञान–विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में विषय एवं संदर्भ के अनुसार इन शब्दों की निर्मिति की गई है, जिससे कि ज्ञान का वह क्षेत्र स्पष्ट हो सके। इसके

अन्तर्गत मानविकी, विज्ञान, प्रौद्योगिकी, कार्यालयी, प्रशासन, अंतरिक्ष, कम्प्यूटर तथा दूरसंचार आदि क्षेत्र आते हैं। हिंदी में तकनीकी और वैज्ञानिक शब्दावली विगत तीन-चार दशकों से प्रचलित है, जिसके अन्तर्गत 1961 में वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग की स्थापना की गई थी। यह आयोग तकनीक के क्षेत्र में राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रचलित शब्दों के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका तय करता है। इसकी भी जानकारी आवश्यक है, हिन्दी के सही कार्यान्वियन के लिए।

आज समय बदल चुका है। हिन्दी जनसंचार की प्रमुख भाषा के रूप में निरन्तर उन्नति की ओर अग्रसर है। हिंदी के प्रगामी प्रयोग को लेकर सरकार खूब सचेत है। कभी-कभी दक्षिण से कुछ नकारात्मक खबरें आ जाती हैं, पर स्थिति कुल मिलाकर ठीक है। राजभाषा हिंदी के कार्यान्वियन की सही नीति यह है कि हम संकल्प लें कि हम इसके प्रयोग की बारीकियों को समझकर हिंदी में काम करेंगे और कभी भी इसके प्रयोग को लेकर किसी भी प्रकार का संकोच नहीं पालेंगे।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ने भी अपनी भाषा नीति से यह स्पष्ट कर दिया है कि भारत एक बहुभाषिक देश है। इस देश में सभी भाषाओं का सम्मान है। जिस तरह अनेकता में एकता भारतीय संस्कृति की अभूतपूर्व विशेषता है, उसी तरह भारतीय भाषाओं का सामंजस्य भी अभूतपूर्व है। भारतीय भाषा के अध्ययन से निश्चित रूप से अखिल भारतीय दृष्टि निर्मित होगी। और इसमें हिन्दी, जो भारत देश की राजभाषा है, सबसे महत्वपूर्ण भूमिका निभायेगी। हिन्दी देश के अधिकांश लोग लिखते हैं, बोलते और समझते हैं। इसलिए हमारी सम्पर्क भाषा के रूप में भी वह सबसे अधिक इस्तेमाल होती है। जरूरी यह है कि हम राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के भाषायी सरोकार को ध्यान में रखकर अपनी भाषा नीति का निर्धारण करें तथा हिन्दी के प्रगामी प्रयोग को बढ़ावा दें। हिन्दी के साथ-साथ हम देश की अन्य भारतीय भाषाओं का भी सम्मान करें, तभी हम राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के लक्ष्य को प्राप्त कर सकेंगे।

''हमारी हिन्दी का अभिमान बचा रहे
दूसरी भाषाओं का सम्मान बचा रहे।''

सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग
डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय
सागर (म.प्र.)

देश के सबसे बड़े भू भाग में बोली जाने वाली
हिन्दी राष्ट्र-भाषा पद की अधिकारिणी है। – सुभाषचंद्र बोस

प्राचीन पाठ्यक्रम से प्रभावित राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020

– डॉ. सञ्जय कुमार

किसी भी देश और समाज की उन्नति का एक मार्ग केवल शिक्षा है। शिक्षा ही मनुष्य में मनुष्यत्व का आधान करती है। वही जीवन जीने का मार्ग प्रशस्त करती है। हमारे यहाँ शिक्षा को विद्या अर्थ में भी ग्रहण किया जाता है। जिसके सम्बन्ध में नीतिशतककार कहते हैं कि विद्या ही मनुष्य का सबसे श्रेष्ठ रूप है। वह छिपा हुआ सुरक्षित धन है। विद्या भोग–विलास देने वाली है। विद्या गुरुओं का भी गुरु है। परदेश में विद्या ही बन्धुजन है। विद्या सबसे उत्कृष्ट देवता है। राजाओं के मध्य विद्या ही पूजी जाती है धन नहीं, इसलिए विद्या से हीन मनुष्य पशु है।[1] इसी महत्दृष्टि के साथ भारत सरकार के द्वारा शिक्षा नीति में समय–समय पर परिवर्तन किया जाता रहा है। यह परिवर्तन 1968 ई. 1986 ई. और 2020 ई. में किया गया। जिसका एकमात्र उद्देश्य सबको अच्छी शिक्षा प्रदान करना है। इसके अतिरिक्त समय–समय पर विभिन्न समितियों और आयोगों का भी गठन अच्छी शिक्षा के लिए ही किया गया है। यथा– कलकत्ता विश्वविद्यालय परिषद्–1818 ई. डब्लू डब्लू हण्टर आयोग–1882-83, सैवडर आयोग–1917, सर फिलिप हर्टोग समिति–1929, सर जॉन सार्जेण्ट समिति–1944, डॉ. एस. राधाकृष्णन आयोग–1948-49, डॉ. डी.एस. कोठारी आयोग–1964, जी.एस. रेड्डी समिति–1992, प्रो. यशपाल समिति–1992 आदि। इन सबका उद्देश्य शिक्षा में निरन्तर सुधार ही रहा है। इसी रूप में राष्ट्रीय शिक्षा नीति २०२० को भी भारत सरकार के द्वारा अंगीकार किया गया है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 चार भागों में विभाजित है, जिसमें कुल अध्यायों की संख्या 27 है। जिसमें प्रथम भाग में स्कूल शिक्षा, द्वितीय भाग में उच्चतर शिक्षा, तृतीय भाग में अन्य केन्द्रीय विचारणीय मुद्दे और चतुर्थ भाग में क्रियान्वयन की रणनीति पर विचार किया गया है। अध्याय चार से पाठ्यक्रम की बात प्रारम्भ हो जाती है। वस्तुतः पाठ्यक्रम ही शिक्षा का नियामक होता है। इसलिए राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के स्कूली शिक्षा भाग में सर्वप्रथम स्कूली शिक्षा के पाठ्यक्रम और शैक्षणिक ढ़ाचे को पुनर्गठित करने की बात की गयी है। ताकि पाठ्यक्रम 3-8, 8-11, 11-14 और 14-18 की आयु के विभिन्न पड़ावों पर विद्यार्थियों के विकास की अलग–अलग अवस्थाओं के अनुसार उनकी रुचियों और विकास की जरुरतों पर समुचित आधारित होगा।[2] साथ ही यह भी स्वीकार किया गया है कि फांउडेशनल स्टेज में पांच वर्षीय लचीली, बहुस्तरीय खेल/गतिविधि आधारित अध्ययन और ईसीसीई (Early Childhood Care and Education) के पाठ्यक्रम और शिक्षण शास्त्र शामिल होंगे। इसमें अच्छे व्यवहार, शिष्टाचार, नैतिकता, व्यक्तिगत और सार्वजनिक स्वच्छता, सामूहिक कार्य व सहयोग आदि पर केन्द्रित पाठ्यक्रम होगा।[3] साथ ही साथ विद्यार्थियों में रटने के जगह विषय को समझने पर बल दिया जायेगा।[4] जिससे विदित होता है कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 विद्यार्थियों के चतुर्दिक विकास पर केन्द्रित

है। विद्यार्थी के अन्दर सहयोग और सहकार जैसे मूल्य बढ़े। इस नीति का सबसे बड़ा लक्ष्य भारतीय शिक्षा को भारतीय संस्कृति के अनुरूप देने की व्यवस्था बनाई गयी है क्योंकि भारतीय संस्कृति विश्वसंस्कृति में अपना विशिष्ट स्थान रखती है। इसकी परम्पराएं, जीवन–व्यवहार, मूल्य, आचरण–व्यवहार आदि सबको अनुरंजित करती है। दया, प्रेम, क्षमा और त्याग इसके ऐसे गुण हैं जो अंकिचन को भी धनाढ्य जैसे मान–सम्मान दिलाते हैं इस बात को ध्यान रखते हुए राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के बाईसवें अध्याय में भारत के सांस्कृतिक विरासत का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि यहाँ कि कला, साहित्यिक कृतियों, प्रथाओं, परम्पराओं, भाषाई अभिव्यक्ति, कलाकृतियों, ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक धरोहरें आदि भारतीय संस्कृति के पहचान हैं।[5] बच्चों में अपने सांस्कृतिक इतिहास कला, भाषा एवं परम्परा की भावना और ज्ञान के विकास के द्वारा ही एक सकारात्मक सांस्कृतिक पहचान और आत्मसम्मान की भावना निर्मित की जा सकती है।[6] भाषा के संरक्षण आदि की दृष्टि से साहित्य, नाटक, संगीत, फिल्म आदि के रूप में कलाओं द्वारा भाषा के संरक्षण की बात कही गयी है।[7] वहीं चौथे अध्याय में कहा गया है कि भारत की शास्त्रीय भाषाओं और साहित्य के महत्त्व, प्रासंगिकता और सुन्दरता को उपेक्षित नहीं किया जा सकता है। संस्कृत संविधान की आठवीं अनुसूची में वर्णित एक महत्त्वपूर्ण आधुनिक भाषा होते हुए भी इसका शास्त्रीय साहित्य इतना विशाल है कि सम्पूर्ण लैटिन और ग्रीक साहित्य को भी यदि मिलाकर इसकी तुलना की जाये तो भी इसकी बराबरी नहीं कर सकता। संस्कृत साहित्य में गणित, दर्शन, व्याकरण, संगीत, राजनीति, चिकित्सा, वास्तुकला, धातुविज्ञान, नाटक, कविता, कथा और ज्ञान परम्परा का कोश समाहित है।[8] इससे विदित होता है कि आधुनिक ज्ञान–विज्ञान की दृष्टि से संस्कृत से अच्छा कोई दूसरा विकल्प नहीं है। यहाँ पर नैतिकता को बढ़ावा देने की बात भी कही गयी है। पारंपरिक भारतीय मूल्यों, संवैधानिक मूल्यों के संरक्षण करने पर यहाँ जोर दिया गया है। जैसे– सेवा, अहिंसा, स्वच्छता, सत्य, निष्कामकर्म, शान्ति, त्याग, सहिष्णुता, विविधता, आचरण, लैंगिक संवेदनशीलता, वृद्धों की सेवा, पर्यावरण–संरक्षण, शिष्टाचार, धैर्य, क्षमा, करुणा, देशभक्ति, न्याय, स्वतंत्रता आदि गुणों को विद्यार्थियों में विकसित किया जायेगा।[9] इसके साथ–साथ अध्याय–11-1 में कहा गया है कि भारत में समग्र एवं बहुविषयक तरीके से सीखने की एक प्राचीन परम्परा है। तक्षशिला और नालन्दा जैसे विश्वविद्यालयों से लेकर ऐसे कई व्यापक साहित्य है जो विभिन्न क्षेत्रों में विषयों के संयोजन को प्रकट करते हैं। प्राचीन भारतीय साहित्य जैसे वाणभट्ट की कादम्बरी शिक्षा को 64 कलाओं के ज्ञान के रूप में परिभाषित करती हैं।[10] इस प्रकार यहाँ कादम्बरी ने पाठ्यक्रम की ओर संकेत किया गया है। कादम्बरी ने चन्द्रापीड के सम्बन्ध में बताया गया है कि वह अमुक–अमुक विद्याओं के साथ 64 कलाओं में भी निपुण है। चन्द्रपीड व्याकरण शास्त्र, मीमांसा, न्याय, धर्मशास्त्र, राजनीति, व्यायामविद्या, धनुष, चक्र, चर्म, तलवार, शक्ति, भाला, कुठार, गदा आदि सभी प्रकार के आयुधों में, रथचर्या में, गजपृष्ठ में, घुड़सवारी में, वीणा, बांसुरी, मृदंग, कांस्य पात्र, मजीरा, ददुर आदि वाद्यों में नारदीय आदि गान्धर्व वेद विशेषों में, हाथी को सिखाने में, घोड़े की आयु का ज्ञान करने में, पुरुषों के लक्षणों में, चित्र निर्माण में, पत्र

भंग के छेदन में, मिट्टी या लकड़ी का खिलौने बनाने में, लेखन कला में, सभी द्यूत कलाओं में, गन्धशास्त्रों में, पक्षियों के आवाज का ज्ञान करने में, गृह सम्बन्धी गणित में, रत्नों की परीक्षा में, काष्ठ सम्बन्धी कार्यों में, दांतों से सम्बद्ध कलाओं में, वास्तु विद्या में, आयुर्वेद में, यन्त्रों के प्रयोग में, विषय का प्रभाव हटाने में, सुरंगों के भेदन में, तैरने में, लांघने में, कूदने में, वात्स्यायन प्रणीत कामशास्त्र में, इन्द्रजाल में, कथाओं में, नाटकों में, आख्यायिकाओं, काव्यों में, महाभारत, पुराण, इतिहास तथा रामायण में सभी लिपियों, सभी देश के स्थानीय भाषाओं के ज्ञान में, सभी संज्ञाओं–पारिभाषिक शब्दों के विषय में, सभी शिल्पों, छन्दों के ज्ञान में तथा अन्य सभी कलाओं में अत्यधिक कुशलता प्राप्त कर ली।[11] इस प्रकार राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में प्राचीन पाठ्यक्रम के आधार पर कौशल विकास को ध्यान में रखकर शिक्षा देने की बात कही गयी है। प्राचीन शिक्षा व्यवस्था में सर्वांगीण विकास की तरह राष्ट्रीय शिक्षा नीति भी सर्वांगीण विकास पर केन्द्रित है। यदि भारत में प्राचीन शिक्षा और पाठ्यक्रम की बात की जाय तो कवि दण्डी भी बहुत प्रासंगिक दिखलाई पड़ते हैं। उन्होंने अपने दशकुमारचरितम् में महर्षि वामदेव के आश्रम में जिन विषयों को राजवाहन को पढ़ने का उल्लेख किया है, वह इस प्रकार है–

ततः सकललिपिज्ञानं निखिलदेशीयभाषापाण्डित्यं षडङ्गसहितवेदसमुदायकोविदत्त्वंकाव्य–नाटकाख्यानकाख्यायिकेतिहास। चित्रकथासहितपुराणगणनैपुण्यं धर्मशब्दज्योतिस्तर्क–मीमांसादि समस्त शास्त्रनिकरचातुर्यं कौटिल्यकामन्दकीयादिनीतिपटलकौशल वीणाद्य–शेषवाद्यदाक्ष्यं संगीत। साहित्यहारित्वं मणिमन्त्रौषधादिमायाप्रपञ्चचुञ्चुत्त्वमातङ्गतुरङ्गादि वाहनारोहणपाटवं विविधायुधप्रयोगचणत्वं चौर्यदुरोदरादिकपटकलाप्रौढत्वं च तत्तदाचार्येभ्यः सम्यग्लब्ध्वा।[12]

अर्थात् तब उसने सारी लिपियाँ सीखी, सब देश की भाषाओं की जानकारी के साथ–साथ षडङ्ग सहित चारों वेदों में पाण्डित्य हासिल किया। काव्य, नाटक, आख्यान, आख्यायिका, इतिहास, चित्रकथा सहित पुराणों की निपूणता, धर्मशास्त्र, व्याकरण, ज्योतिष, मीमांसा, तर्क आदि शास्त्रों की चतुरता, कौटिल्य, कामन्दकीयादि नीतिशास्त्रों का कौशल, वीणा आदि सभी वाद्ययन्त्रों को जानने की दक्षता, संगीत साहित्य में मनोहरता मणि, मन्त्र और औषध आदि लौकिक माया प्रपञ्च में कुशलता हाथी घोड़े आदि वाहनों पर चढ़ने की पटुता भिन्न–भिन्न प्रकार के अस्त्रों को चलाने की पटुता चोरी और जुआ आदि छल विद्याओं में प्रौढ़ता, उन–उन आचार्यों से उसने अच्छी तरह प्राप्त की। इस प्रकार इतने विषय को पढ़ाने के लिए अलग आचार्य की व्यवस्था की गयी थी। भाषाओं के सम्बन्ध में कवि दण्डी स्पष्ट उल्लेख करते हैं कि राजवाहन सारी लिपियों को सीखा, सब देश की भाषाओं की जानकारी के साथ वेदाङ्ग सहित चारों वेदों का अध्ययन किया था। यानि लिपि ज्ञान और अनेक भाषा ज्ञान को तत्त्कालीन शिक्षा व्यवस्था के अनिवार्य अंगों में से माना गया है। आज भी लिपि ज्ञान और भाषा ज्ञान की व्यवस्था प्राथमिक स्तर से ही देखने मिलती है। आज के पाठ्यक्रमों में मातृभाषा को

विशेष महत्त्व दिया गया है। जिसका कारण शैशवकाल के रहन–सहन को माना गया है। यानि परिवार में जिस भाषा में व्यावहारिक जीवन संचालित होता है उसी भाषा में स्कूलीय शिक्षा भी होनी चाहिए। वैसे प्राचीन काल में चौदह विधाओं का भी उल्लेख कालिदास[13] और श्रीहर्ष[14] के द्वारा किया गया है। इन चौदह विधाओं के रूप में चार वेद, छः वेदाङ्ग (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष) धर्मशास्त्र, पुराण, मीमांसा और न्याय की गणना की जाती है। जिसका मूल आधार भारतीय ज्ञान परम्परा और संस्कृति ही दृष्टिगोचर होती है। यदि हम 'अर्थशास्त्र' की बात करें तो वहाँ चार विद्याओं का उल्लेख मिलता है। वहाँ कहा गया है–

आन्वीक्षकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिश्चेति विद्या।[15]

अर्थात् आन्वीक्षकी, त्रयी, वार्ता और दण्डनीति ये चार विद्याएं हैं। अर्थशास्त्र के अनुसार सांख्य, योग और लोकायत (नास्तिक दर्शन) आन्वीक्षकी विद्या के अन्तर्गत आते हैं। इसी प्रकार त्रयी में धर्म–अधर्म का, वार्ता में अर्थ–अनर्थ का और दण्डनीति में सुशासन–दुःशासन का प्रतिपादन किया गया है। त्रयी आदि विद्याओं में प्रधानता–अप्रधानता को भिन्न–भिन्न युक्तियों से निर्धारित करती हुई आन्वीक्षकी विद्या लोक का उपकार करती है। सुख–दुःख से बुद्धि को स्थिर करती है और सोचने, विचारने, बोलने तथा कार्य करने में सक्षम बनाती है। यह आन्वीक्षकी विद्या सर्वदा ही सब विद्याओं का प्रदीप, सभी कार्यों का साधन और सब धर्मों का आश्रय मानी गयी है। 'अर्थशास्त्र' में त्रयी की व्याख्या करते हुए इस प्रकार कहा गया है–

सामर्ग्यजुर्वेदास्त्रयस्त्रयी। अथर्ववेदेतिहासवेदौ च वेदाः।
शिक्षा कल्पो व्याकरण निरुक्तं छन्दोविचिति ज्योतिषमिति चाङ्गानि।।[16]

अर्थात् साम, ऋक्, तथा यजु तीनों वेदों का समन्वित नाम ही त्रयी है। अथर्ववेद और इतिहासवेद भी वेद कहे जाते हैं। शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्दोविचिति और ज्योतिष ये छ: वेदाङ्ग है। यहाँ पर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि के कर्त्तव्यपालन को भी बताया गया है। यहाँ पर गृहस्थ, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी, संन्यासी आदि के कर्त्तव्यों को विद्या के रूप में प्रतिपादित किया गया है। सबका जीवन व्यावहार और कर्मक्षेत्र विद्या के ही अन्तर्गत आता है। साथ ही यह भी कहा गया है कि प्रत्येक वर्ण तथा प्रत्येक आश्रम का धर्म है कि वह किसी भी प्रकार की हिंसा न करे, सत्य बोले, पवित्र बना रहे, किसी से ईर्ष्या न करे, दयावान और धर्मशील बना रहे।[17] इस प्रकार यहाँ पर यह भी बताया गया है कि अपने धर्म का पालन करने से स्वर्ग और मोक्ष की प्राप्ति होती है। उसका पालन न करने से वर्ण तथा कर्म में संकरता आ जाती है, जिससे लोक का नाश हो जाता है।[18] इस प्रकार यहाँ पर विद्या और जीवन के चर्मोलक्ष्य की ओर संकेत किया गया है। इस मनुष्य का चरम लक्ष्य चार्वाक को छोड़कर सभी दार्शनिकों ने किसी न किसी रूप में मोक्ष को ही माना गया है। इसीलिए तो उपनिषदों में भी कहा गया है या विद्या सा विमुक्तये। अर्थात् विद्या वह है जो मुक्ति प्रदान करे।[19]

वार्ता के सम्बन्ध में अर्थशास्त्र में इस प्रकार कहा गया है। **कृषि पाशुपाल्ये वाणिज्या च वार्ता। धान्यपशुहिरण्य कुप्यविष्टि प्रदानादौपकारिकी। तया स्वपक्षं परपक्षं च वशीकरोति कोशदण्डाभ्याम्।**[20] अर्थात् कृषि, पशुपालन और व्यापार ये वार्ता के विषय हैं। यह विद्या, धान्य, पशु, हिरण्य, ताम्र आदि खनिज पदार्थ और नौकर चाकर आदि को देने वाली परम उपकारिणी है। इसी विद्या से उपार्जित कोश और सेना के बल पर राजा स्वपक्ष तथा पर पक्ष को वश में कर लेता है। दण्ड विद्या के विषय में आचार्य कौटिल्य का इस प्रकार का मानना है– **आन्वीक्षकीत्रयीवार्तानां योगक्षेमसाधनो दण्डः। तस्यनीतिर्दण्डनीतिः। अलब्धपरिरक्षणीः, रक्षितविवर्धनीः वृद्धस्य तीर्थेषु प्रतिपादनी च।**[21] अर्थात् आन्वीक्षकी त्रयी और वार्ता इन सभी विद्याओं की सुख–समृद्धि दण्ड पर निर्भर है दण्ड (शासन) के प्रतिपादित करने वाली नीति ही दण्डनीति कहलाती है। वही अप्राप्त वस्तुओं को प्राप्त कराती है और प्राप्त वस्तुओं की रक्षा करती है। रक्षित वस्तुओं की वृद्धि करती है और वही सम्बन्धित वस्तुओं को समुचित कार्यों में लगाने का निर्देश करती है। अर्थशास्त्र में इस दण्ड विद्या के द्वारा ही चारों वर्ण– आश्रम, सभी लोक अपने धर्म कर्मों में प्रवृत्त होकर निरन्तर अपनी–अपनी मर्यादा में बने रहते हैं। इसीलिए आचार्य मनु ने कहा है–

दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वा दण्ड स्वाभिरक्षति ।
दण्डः सुप्तेषु जागर्ति दण्डं धर्मं विदुर्बुधा ।।[22]

अर्थात् दण्ड ही सब प्रजाओं का शासन करता है। दण्ड ही सब प्रजाओं की रक्षा करता है। सबके सोते रहने पर दण्डी ही जागता रहता है क्योंकि उसी दण्ड के भय से चोर आदि चोरी दुष्कर्म इत्यादि नहीं करते हैं। विद्वान् लोग दण्ड को धर्म समझते हैं। महाकवि भवभूति भी तत्कालीन शिक्षा व्यवस्था के रूप में जिन पाठ्यक्रमों का उल्लेख करते हैं वह भी राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के रूप में ही दिखलाई पड़ती है। तत्कालीन शिक्षा व्यवस्था भी विविधता से भरी हुई थी। उन्हें अनेक विषयों का बोध कराया जाता था। उत्तररामचरितम् में उपनयन संस्कार से पूर्व आन्वीक्षिकी (न्यायशास्त्र) दण्डनीति (राजनीति) की शिक्षा दी जाती थी। तदन्तर वेदत्रयी[23], उपवेद[24] (आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद, स्थापत्यवेद) वेदाङ्ग, मीमांसा, वेदान्त, सांख्ययोग आदि दर्शनों के साथ ब्रह्म विद्या[25], रामायण[26] व नाट्कलाओं के अध्ययन की व्यवस्था प्रतिपादित की गयी है। यदि हम कलाओं के सम्बन्ध में बात करें 64 कलाओं का भी राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में केवल उल्लेख ही नहीं किया गया बल्कि 64 कलाओं पर आधारित शिक्षा की व्यवस्था करने का निर्देश भी दिया गया है। जिसका उद्देश्य हर हाथ को कार्य मिले। जब विद्यार्थी पढ़ लिखकर बाहर निकले तो उसके सामने बहुत विकल्प हो और वह स्वरुचि के अनुसार अपने हुनर या कारीगरी का उपयोग करे। यह बहुत व्यावहारिक है कोई भी सरकार सभी को सरकारी सेवा में सम्मिलित नहीं कर सकती है लेकिन यह किया जा सकता है कि सभी को कुछ ऐसी ही शिक्षा दी जाये जिससे सरकारी सेवा न मिलने पर वह अपना सहज रूप से जीवन निर्वाह कर सके।

इन चौसठ कलाओं से विद्यार्थी बहुत बड़ा विद्वान नहीं बन सकता है लेकिन एक कलाकार अवश्य बन सकता है। इन चौसठ कलाओं को व्यावसायिक शिक्षा के रूप में सम्मिलित किया जाना चाहिए। यह व्यावसायिक शिक्षा वैकल्पिक हो। विद्यालय, विश्वविद्यालय में कुछ ऐसे केन्द्र बनाये जाने चाहिए जो विद्यार्थियों को चौसठ कलाओं पर आधारित प्रायोगिक शिक्षा प्रदान करें। इस केन्द्र के माध्यम से यह कलात्मक शिक्षा उनके व्यक्तित्त्व विकास के रूप में दी जानी चाहिए, जो विद्यार्थी के रूचि के अनुसार ही होनी चाहिए। कलात्मक शिक्षा थोपी नहीं जा सकती है, क्योंकि कला संस्कारात्मक होती है। सभी को कलाकार नहीं बनाया जा सकता है। इसलिए बिना भेदभाव, जाति धर्म से रहित स्वच्छन्दतापूर्वक विद्यार्थियों में कलात्मक भावना विकसित करने की आवश्यकता है। विद्यार्थी का यह कलात्मक विकास आत्मविश्वास की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण सिद्ध होगा।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के सन्दर्भ में मुझे रामजी उपाध्याय बहुत याद आते हैं जिन्होंने अपने उपन्यास द्वासुपर्णा में शिक्षा–दीक्षा की व्यवस्था और पाठ्यक्रम पर बहुत विस्तार से चर्चा किया हैं। द्वासुपर्णा में बताया गया है कि कृष्ण और बलराम जब प्रथम दिन कक्षा में प्रवेश करते हैं तो उन्हें उस दिन किस प्रकार से शिक्षित किया जाता है। यह ध्यान देने योग्य है–

कुर्म कुरु वीर्यं वैकर्म। समिधमाधेहि। सामित्स्वात्मानं तेजसा ब्रह्मवर्चसेन। मा सुषुप्था। या वृथाः। तदेनमुभयतोह्वमृतेन परिगृह्णातिस्म।[27]

अर्थात् कर्म करो। कर्म शक्ति है। समिधा का आधान करो। तेज और ब्रह्मवर्चस्विता से अपने को प्रकाशित करो। मत सोओ। मृत्यु से बचो। यानि उपाध्याय जी की दृष्टि में पहले विद्यार्थी का व्यक्तित्त्व निर्माण सर्वोपरि होना चाहिए। उनके द्वारा विद्यार्थी को कैसे रहना चाहिए इस विषय में भी यहाँ कहा गया है–

ईश्वरः सर्वत्र सदैव वर्तते इति मनसि कृत्वा सर्वेषां चराचराणां कल्याणं विधातव्यम्। स भगवान सर्वेषां पिता भगवान सर्वेषामात्मा एव। कस्यचित्। प्राणिनोऽनादरस्तु भगवतोऽनादर एव। सर्वेः प्राणिभिः सह तादातन्यमनुभवनीयम्। युस्माकं मनसि कदापि सफलत्वे हर्षः विफलत्वे विषादो वा मा भवतु। कामना हि सर्वगुणापहारिणी। सकामस्य मनोबलम् इन्द्रियबलम्, तेजः सत्यं च सर्वाणि विनश्यन्ति शतहस्त समाहर सहस्रहस्त सङ्किर। केवलाद्यो भवति केवलादी। लोककल्याणवृत्तिर्हि भगवतः श्रेष्ठाराधना। सत्यमेव जयते।[28]

अर्थात् ईश्वर सर्वत्र सदा वर्तमान है। यह विचार करके सभी चराचर का कल्याण करना

चाहिए। वह भगवान सबका पिता है। भगवान सबकी आत्मा है। किसी प्राणी का अनादर भगवान का अनादर है। सभी प्राणियों के साथ तादात्म्य का अनुभव करना चाहिए। आप लोगों के मन में कभी भी सफलता में हर्ष और विफलता में विषाद न हो। कामना सभी गुणों का अपहरण करती है। सकाम का मनोबल, इन्द्रियबल, तेज, सत्य, सभी नष्ट हो जाते हैं। सौ हाथों से कमाओ और सहस्र हाथों से वितरण कर दो। अकेले खाने वाला निरा पापी है। लोक–कल्याण की वृत्ति ही भगवान की श्रेष्ठ आराधना है। सत्य की ही जीत होती है। उपाध्याय जी के द्वारा विद्यार्थियों में मनोबल के उन्नयन की दृष्टि से यह महत्त्वपूर्ण बात है। उन्होंने विद्यार्थियों में राष्ट्रीयता, पर्यावरण, वृद्धसेवा, मित्रता आदि की भावना को विकसित करने के लिए अनेक बातें कही है। साथ ही रामजी उपाध्याय जी पाठ्यक्रमों का भी उल्लेख करते हैं–

वेद वेदाङ्ग पुराणेतिहास दर्शन धर्मशास्त्रादिषु चतुर्दश विद्यासु निष्णाता बभूवुः।
चतुष्षष्टिकलानां प्रमुखासु ते यथारुचि प्रावीण्यं प्राप्तवन्तः।[29]

अर्थात् धीरे–धीरे कृष्ण, बलराम और सुदामा वेद–वेदाङ्ग पुराणेतिहास, दर्शन धर्मशास्त्र आदि चौदह विद्याओं में पारङ्गत हो गये। चौसठ कलाओं में से प्रमुख कलाओं को भी रूचि के अनुसार उन्होंने सीख लिया। साथ ही रामजी उपाध्याय जी ग्राम स्वच्छता और स्त्री पाठशाला में ललित कलाओं की शिक्षा की भी बात अपने उपन्यास द्वासुपर्णा में किये हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि चहुँमुखी विकास की दृष्टि से ही प्राचीन पाठ्यक्रम का विशेष महत्त्वपूर्ण स्थान है। वेद, वेदाङ्ग सहित कला आधारित शिक्षा ज्ञान–विज्ञान के साथ विद्यार्थियों में हुनर, कारीगरी आदि को विकसित करने वाली सिद्ध होगी। प्राचीन पाठ्यक्रम से भारतीय संस्कृति, दर्शन आदि का भी सहज बोध विद्यार्थियों को हो सकेगा। साथ ही भारत बोध का माध्यम भी प्राचीन पाठ्यक्रम बन सकता है। सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह भी है कि प्राचीन पाठ्यक्रम को आधुनिक विषयों से जोड़ने पर एक अलग प्रकार की ज्ञानात्मक संरचना का वातावरण उत्पन्न होगा, जिससे भारत का शिक्षा स्तर अपने उच्च मानदण्डों पर स्थापित हो सकेगा।

सहायक प्राध्यापक, संस्कृत विभाग
डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय
सागर (म.प्र.)

सन्दर्भ:

1. नीतिशतकम्–20
विद्यानाम नरस्य रुपमधिकं प्रच्छन्नगुप्तं धनं
विद्याभोगकरी यशः सुखकरी विद्यागुरुणांगुरु।

विद्या बन्धुजनो विदेशगमने विद्या परा देवता
विद्या राजसु पूज्यते न तु धनं विद्या विहीनः पशुः।।

2. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, 4-1
3. वही, 4-2
4. वही, 4-4
5. वही, 22-1
6. वही, 22-2
7. वही, 22-6
8. वही, 4-17
9. वही, 4-28
10. वही, 11-1
11. कादम्बरी, चौखम्बा विद्या भवन, पृ.159-160
12. दशकुमारचरितम्, पूर्वपीठिका, प्रथमोच्छ्वास, मो.ला.व.दास, वाराणसी, पृ.46-48
13. रघुवंश, 5/21
14. नैषधीयचरितम्, 1
15. अर्थशास्त्र, 1/1/1
16. वही, 7/2/1
17. वही, 1/2/3
18. वही, 1/2/4
19. विष्णुपुराण, 1/19/41
20. अर्थशास्त्र, 1/3/1
21. वही, 1/3/1
22. मनुस्मृति, 7/18
23. उत्तररामचरिततम् अंक–2, तयोस्त्रयीवर्जमितरास्तिस्रो विद्याः सावधानेन परिनिष्ठापिताः। तदन्तरं भगवतैकादशे वर्षे क्षात्रेण कल्पेनोपनीय त्रयीविद्यामध्यापितौ।
24. मालतीमाधवम् 1/10 –
    यद्वेदाध्ययनं तथोपनिषदां सांख्यस्य योगस्य च।
    ज्ञानं तत्कथनेन किं नहि ततः कश्चिद्गुणोनाटके।।
25. उत्तररामचरिततम् 2/3
26. वही, अंक 4
27. द्वासुपर्णा, पूर्व भाग–1, पृ.6
28. वही, पृ.8-9
29. वही, पृ. 28

ग़ज़ल का ऐतिहासिक सफ़र

– प्रो. राजेन्द्र यादव[1]
जुगुल किशोर चौधरी[2]

ग़ज़ल विश्व की सबसे लोकप्रिय विधाओं में से एक है। ग़ज़ल के जन्म की पृष्ठभूमि साहित्य में स्पष्ट रूप से नहीं मिलती, विद्वान अनुमानों के आधार पर या श्रुति परंपरा का सहारा लेकर अपना–अपना मत देते नज़र आते हैं, जिसमें ग़ज़ल की परिभाषा से लेकर उसके विकास की परंपरा का एक स्वरूप ग़ज़ल प्रेमियों के सामने और साहित्य समाज के सम्मुख रखते हैं।

ग़ज़ल की परिभाषा और उसके विकास को लेकर विद्वानों का मत स्पष्ट नहीं है। अरबी भाषा में ग़ज़ल का अर्थ है औरतों से या औरतों के बारे में बाते करना। इस तरह ग़ज़ल की परिभाषा जो विद्वानों ने दी उससे यह पता चलता है कि ग़ज़ल का विकास प्रेमी–प्रेमिका की बातचीत से शुरू होता हुआ क़सीदों के साथ, हुश्न–बुलबुल, जाम–ओ–मीना के साथ अंकुरित हुआ। ग़ज़ल का शाब्दिक अर्थ जो विभिन्न शब्दकोशों में मिलता है उनमें से कुछ विशेष उदाहरण–

ग़ज़ल का शाब्दिक अर्थ है– ''प्रेमी प्रेमिका का वार्तालाप''[1]

''ऐसी पद्यात्मक रचना जिसमें नायिका के सौंदर्य एवं उसके प्रति उत्पन्न प्रेम का वर्णन हो।''[2]

पर्शियन भाषा में ग़ज़ल का अर्थ है– ''सुख़न अज़ ज़नाना गुफ़्तन'' अर्थात औरतों से अथवा औरतों के बारे में बातचीत करने का तरीका अथवा माध्यम।[3]

वर्धा हिंदी शब्दकोश के अनुसार– ''1. उर्दू हिंदी या फ़ारसी में मुख्यत: प्रेम विषयक काव्य जिसमें प्राय: पाँच से ग्यारह शेर होते हैं और सभी शेर एक ही रदीफ़ और काफ़िया में होते हैं अर्थात् दूसरी कड़ी में अनुप्रास होता है। 2. प्रेमिका से वार्तालाप 3. पद्य या मुक्तक काव्य का वह रूप जिसमें प्रतिकात्मकता और गीतात्मकता के साथ अनुभूति की तीव्रता की प्रधानता होती है।''

उर्दू हिंदी शब्दकोश के अनुसार–''स्त्री–प्रेमिका से वार्तालाप; उर्दू फ़ारसी कविता का एक प्रकार विशेष, जिसमें प्राय: 5 से 11 शेर होते हैं। सारे शेर एक ही रदीफ़ और काफ़िए में

---

[1]डॉ. अमरनाथ, हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, (दिल्ली; राजकमल प्रकाशन, 2015), पृ.सं. 139.

[2]डॉ. हरदेव बाहरी, राजपाल हिंदी शब्दकोश, (दिल्ली; राजपाल एंड संज, 2010), पृ.सं. 203.

[3]डॉ. ज़रीना सानी एवं डॉ. विनय वाईकर, आईना–ए–ग़ज़ल, (नागपुर; श्री मंगेश प्रकाशन, 2002), रुदादे–ग़ज़ल.

[4]सं. राम प्रकाश सक्सेना, वर्धा हिंदी शब्दकोश, (दिल्ली; भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशक, 2015), पृ.सं. 341.

होते हैं और हर शेर का मज़मून अलग होता है, पहला शेर मतला कहलाता है जिसके दोनों मिसरे सानुप्रास होते हैं और अंतिम शेर 'मक्ता' होता है जिससे शायर अपना उपनाम लाता है। ग़ज़ल के संग्रह को दीवान एवं संपूर्ण प्रकार के पद्य संग्रह को 'बयाज़' कहते हैं।''[5]

फ़िराक गोरखपुरी के शब्दों में– ''ग़ज़ल असंबद्ध कविता है। ग़ज़ल का मिज़ाज मूलत: समर्पणवादी है।''[6]

शमशेर बहादुर सिंह के शब्दों में– ''ग़ज़ल एक लिरिक विधा है जिसकी कुछ अपनी शर्तें हैं। अपना प्रतीकवाद और जीवंत परंपरा है।''[7]

स्पष्ट रूप से विद्वानों और आलोचकों की नज़र में ग़ज़ल प्यार, मोहब्बत की बोली है। आशिक, माशूक, उनका प्यार तथा प्यार में उभरने वाली तमाम छटाओं का वर्णन ग़ज़ल में होता रहा है साथ ही इसकी अपनी कुछ शर्तें और नियम होते हैं।

ग़ज़ल के शुरुआती दौर में ग़ज़ल सिर्फ प्रेमी–प्रेमिका या औरतों से बातचीत तक सीमित थी लेकिन जैसे–जैसे इसका विकास हुआ, ग़ज़ल की दशा और दिशा बदली। ग़ज़ल ऊह–आह के विषय से आगे निकल जन–जीवन के दु:ख–दर्द, पीड़ा को बयां करने और जन–जन की आवाज़ बनने की दिशा में निरंतर आगे बढ़ती चली गयी। लेकिन ग़ज़ल की परिभाषा और अर्थ का विकास नहीं हो सका, ग़ज़ल आज जिन ज्वलंत मुद्दों और उद्देश्यों को साथ लेकर चल रही है उस दृष्टि से ग़ज़ल को मात्र एक स्त्री या प्रेमी से वार्तालाप जैसी परिभाषा में बांधना अब ठीक नहीं माना जा सकता।

1. अरबी–फारसी ग़ज़ल का इतिहास

ग़ज़ल अरबी में जन्मी प्रसिद्ध काव्य विधा है जो धीरे–धीरे सम्पूर्ण भारत में पर्शियन–फ़ारसी, उर्दू से होते हुए सम्पूर्ण भारत में अवतरित हुई। ग़ज़ल एक 'अरेबिक' शब्द है लेकिन विद्वानों का मानना है कि ग़ज़ल को मान्यता पर्शियन, उर्दू, हिंदी, मराठी, पंजाबी, गुजराती और अन्य भाषाओं में मिली है उतनी अरेबिक में नहीं। इतिहास भी यह स्पष्ट करता है कि ग़ज़ल का जन्म अरब देशों के रेगिस्तान में हुआ, जब वहाँ के निवासी कबीलों में रहते थे। अपने सरदार या राजा को ही अपना सर्वस्व मानते थे और किसी एक धर्म के उपासक नहीं थे। रात होते ही क़बीले के लोग एक साथ बैठ कर कुछ मनोरंजन या अमोद–प्रमोद करते थे। अपने सरदार की तारीफ में अक्सर क़सीदा पढ़ने और गाने का चलन था लेकिन क़सीदा कहने के पहले दो पंक्तियों का, प्रेम तथा प्रणयरस में डूबा, तश्बीब पढ़ने का चलन भी था।

---

[5]सं. मुहम्मद मुस्तफा खाँ 'माद्दाह', उर्दू हिंदी शब्दकोश, (लखनऊ; उत्तरप्रदेश हिंदी संस्थान, 2012), पृ.सं. 177.

[6]डॉ.सरस्वती पाण्डेय एवं गोविंद पाण्डेय, हिंदी भाषा एवं साहित्य का वस्तुनिष्ठ इतिहास, (इलाहाबाद; अभिव्यक्ति प्रकाशन, 2014), पृ.सं. 228.

[7]डॉ.सरस्वती पाण्डेय एवं गोविंद पाण्डेय, हिंदी भाषा एवं साहित्य का वस्तुनिष्ठ इतिहास, (इलाहाबाद; अभिव्यक्ति प्रकाशन, 2014), पृ.सं. 228.

समय बीतता गया अरब के नागरिकों ने इस्लाम अपनाया और धर्म प्रचार हेतु पर्शिया (ईरान) पर धावा बोल दिया। बहुतांश पर्शियन, मुसलमान हुए और कुछ अपने धर्म को बरकरार रखते हुए हिंदुस्तान पहुँच गए। वही आज के लोग हमारे पारसी भाई हैं, पर्शिया में युद्ध के साथ धर्म परिवर्तन हुआ और साथ–साथ संस्कृति तथा रीति–रिवाजों का भी आदान–प्रदान हुआ। अरबों का क़सीदा और तश्बीब पर्शियन साहित्यकारों के पास पहुँचा। पर्शियन कवि विद्वान थे, अनुभवी थे, सौंदर्योपासक थे, रसिक थे और जीवन के हर रंग से वाक़िफ थे। क़सीदा उन्होंने स्वीकार अवश्य किया लेकिन तश्बीब उनके मन को छू गया। दो पंक्तियों वाली मोहब्बत की दास्तान को बरकरार रखते हुए उन्होंने ग़ज़ल का निर्माण किया। इतिहास यह भी लिखता है कि पर्शियन **कवि रोडकी** (ई.स. 880-949) ने तश्बीब को क़सीदा से अलग किया और प्रेम रंग में रंगी, दो–दो पंक्तियों वाली, सबसे पहली ग़ज़ल आवाम को पेश की। यही पर्शियन ग़ज़ल, धर्म प्रचारक, आक्रांता तथा मुगलों की सेनाओं के साथ भारत आई। निष्कर्षत: हजारों वर्ष पहले ग़ज़ल का जन्म ईरान में हुआ और इसे फ़ारसी भाषा में लिखा या कहा गया। ग़ज़ल का शुरुआती दौर **अमीर खुसरो** के कालखंड से शुरू होता है और ग़ज़ल पर्शियन भाषा में लिखी जाती थी तथा इसका विषय मोहब्बत और प्यार–मोहब्बत के सुख दु:ख का हुआ करता था। ग़ज़ल विधा को फ़ारसी कवियों ने उनसे उधार लिया और उनके शिल्प का पालन करते हुए आगे बढ़े लेकिन विषयवस्तु को पीछे छोड़ दिया। पर्शियन ग़ज़लकारों ने अरबी–ग़ज़ल की कथावस्तु को आधार बनाकर बात तो दैहिक अथवा भौतिक प्रेम की ही की लेकिन अर्थ–विस्तार द्वारा दैहिक प्रेम को आध्यात्मिक प्रेम में परिणत कर दिया। फ़ारसी–ग़ज़ल में अरबी–ग़ज़ल का 'इश्के–मजाज़ी' मतलब (सांसारिक प्रेम) से 'इश्के–हक़ीक़ी' (ईश्वरीय प्रेम) में बदल दिया।

फारसी ग़ज़ल ने प्रेमी को साधक बना दिया तथा प्रेमिका को ब्रह्म का दर्जा प्रदान कर दिया। यह सब सूफ़ी ग़ज़लकारों के कारण हुआ जिन्होंने सांसारिक प्रेम के माध्यम से ईश–प्रेम के प्रचार को उद्देश्य बनाकर जनमानस में सुप्त पड़े दिव्य–तत्व को जगाने का अभियान शुरू किया। सूफ़ी साधना में विरह को मिलन से अधिक महत्व दिया जाता है। सूफ़ी साधना पद्धति का भवन ही विरह की नीव पर निर्मित है इसलिए फ़ारसी ग़ज़ल में संयोग पक्ष कभी मुखरता प्राप्त न कर सका। वियोग, पक्ष का प्रभुत्व सदैव बना रहा और ग़ज़ल में विरहदग्ध प्रेमियों के रुदन क्रंदन का स्वर प्रधान रहा। सूफ़ी परंपरा की अमिट छाप पर्शियन ग़ज़ल की एक विशेषता बन गई।

अमीर ख़ुसरो आशु कवि थे, इन्हें फ़ारसी का पहला कवि माना गया/माना जाता है। ये संगीतज्ञ थे तथा ख़याल गायकी के जनक थे। जिन्हें हिंदवी भाषा पर बड़ा नाज़ था। आरंभ में उन्होंने ग़ज़ल को भला बुरा जरूर कहा किन्तु अंतत: 450 ग़ज़लों की निर्मित भी की। उनकी कुछ गज़लों का पहला मिसरा पर्शियन में तथा दूसरा हिंदवी में हुआ करता था। गोया–

''यकायक अज़दिल दो चश्मे जादू, बसद फ़रेहम बबुर्द तस्कीं
किसे पड़ी है जो जा सुनाये पियारे पी को हमारी बतियाँ।
चूँ शम्अ सोज़ा, चूँ ज़र्रा हैराँ, ज़कहरे आँ मह बगुश्त आख़िर
न नीद नैना, न अंग चैना, न आप आवें न भेजे पतियाँ।''[8]

***

''ज़ हाले मिस्की मकुन तग़ाफुल दुराए नैना बनाए बतियाँ,
कि ताबे हिज़राँ न दारम ऐ जाँ, न लेहु काहे लगाए छतियाँ।''
–अमीर खुसरो[9]

अमीर खुसरो को विद्वान ग़ज़ल का पहला कवि मानते हैं लेकिन स्वयं खुसरो अपनी शायरी में ग़ज़ल का पहला कवि **मसऊद साद सलमान लाहौरी** को अपने से पूर्व का ग़ज़लकार मानते हैं। इस प्रकार ग़ज़ल की परंपरा की नीव रखी तो अरबी में गयी लेकिन उसका विकास पर्शियन में ही हुआ।

2. उर्दू–ग़ज़ल का इतिहास

उर्दू तुर्की शब्द है और इसका अर्थ है लश्कर या सैनिकों की छावनी। स्पष्ट है कि उर्दू भाषा का जन्म सैनिकों के पड़ाव में हुआ जहां मुगल सैनिक अपनी–अपनी भाषा बोलते थे तथा भारतीय सैनिक, व्यापारी, स्त्रियाँ और नागरिक अपनी–अपनी भारतीय भाषा बोलते थे। इन सब भाषाओं के समागम से उर्दू भाषा का जन्म हुआ जिसे आरंभ में 'रेख्ता' कहा गया। इस भाषा का जन्म ग़ज़ल के विकास के कई सौ साल बाद हुआ। उर्दू भाषा का जन्म 1700 के आस–पास हुआ।

शाहजहाँ के कालखंड में रेख़ता का नामांतर 'उर्दू' हुआ। ग़ज़ल पर्शियन भाषा से उर्दू में आई और धीरे–धीरे भारत की अन्य भाषाओं में प्रविष्ट हो गई। धीरे–धीरे उर्दू भाषा ने राजदरबारों में तथा आवाम की रोज़मर्राह ज़िंदगानी में भी अपनी धाक जमाई और पर्शियन को धीरे–धीरे पीछे छोड़ती चली गई। ग़ज़ल पर्शियन से हटकर उर्दू में लिखी जाने लगी। फिर भी प्रभाव अधिकतर पर्शियन शब्दों का, पर्शियन मुहावरों का तथा दकनी बोली का हुआ करता था। दहलवी के शायरों का भी अच्छा खासा योगदान उर्दू ग़ज़ल के विकास में रहा। उर्दू ग़ज़ल के इतिहास में कई उतार–चढ़ाव और नए–नए मोड़ आए जिससे कई बार ग़ज़ल का स्तर गिरा भी और अंतत: अच्छे शायरों की मौजूदगी ने ग़ज़ल को एक नया आयाम दिया।

---

[8]डॉ. ज़रीना सानी एवं डॉ. विनय वाईकर, आईना–ए–ग़ज़ल, (नागपुर; श्री मंगेश प्रकाशन, 2002), रुदादे–ग़ज़ल.
[9]रामनारायण स्वामी 'अंका', समकालीनता और हिंदी ग़ज़ल, (दिल्ली; नवचेतन प्रकाशन, 2005), पृ.स. 25.

ग़ज़ल जब फ़ारसी से उर्दू में आई तो उसका शिल्पगत परिवेश तो ज्यों का त्यों स्वीकृत हुआ लेकिन कथ्य एकदम भारतीय हो गया। दक्षिणी उर्दू के गजलकारों ने अरबी–फ़ारसी के स्थान पर भारतीय प्रतीकों, काव्य रूढ़ियों तथा सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को लेकर ग़ज़ल–रचना की और यही कारण था कि ग़ज़ल की फ़ारसी कथावस्तु (दैहिक प्रेम बनाम अध्यात्म) भी भारत की उपज प्रतीत होती रही। लेकिन जब यह काव्य विधा उत्तर भारत में आई तो फ़ारसी भाषा के शासकीय प्रभुत्व से अछूती न रह सकी।

मोहम्मद कुली कुतुब शाह उर्दू के पहले शायर हैं जिन्होंने अपना दीवान संकलित किया। 1850 मे गोलकुंडा की कुतुबशाही सल्तनत के बादशाह बने शहर हैदराबाद इन्हीं का बसाया हुआ है। मोहम्मद कुतुबशाह पूरी तरह इश्क और शायरी में डूबे हुए थे। इनके बारे में कहा जाता है कि वो आम बातचीत भी शायरी के अंदाज़ में किया करते थे।

''पिया बाज प्याला पिया जाए ना
पिया बाज यक तिल जिया जाए ना

कुतुब शह न दे मुज दिवाने को पंद
दिवाने कूँ कुछ पंद दिया जाए ना।''[10]

उर्दू के आरंभिक परंपरा में मोहम्मद अली कुतुबशाह, चंद्रभान 'बरहमन' अब्दुल हसन तानाशाह, 'अयागी' मोहम्मद अमीन, सैयद मीराँ मियाँ खाँ 'हाशमी', इब्राहिम आदिलशाह 'शाही', सुलतान मोहम्मद कुतुबशाह, गव्वासी, वजही आदि से सवरते हुए 'वली' मोहम्मद वली तक पहुंची। जहाँ ग़ज़ल को एक नया मोड़ दिया। वली उर्दू के बाबा आदम कहे जाते हैं, इन्होंने उर्दू शायरी से पर्शियन शब्दों को काफी हद तक निकाल दिया।

''खूबरू ख़ूब काम करते हैं
यक निगाह में गुलाम करते हैं।

दिल जलाते हैं ऐ 'वली' मेरा
सर्व–क़द जब खिराम करते हैं।''[11]

–वली

उर्दू परंपरा में शायरों ने खूब नाम कमाया और एक लंबी श्रंखला उर्दू ग़ज़ल के सामने विकसित हुई जिनमें **सिराज़, दाऊद, फ़ाइज़ आबरू, मज़हर जाने जानां, ख़ान आरज़ू, हातिम, नाजी, फ़ूगाँ, यकरंग,** आदि हुए। इसी दौर के मशहूर शायर **मीर तकी मीर** और **सौदा** हुए।

---

[10]संकलन फ़हरत एहसास, ग़ज़ल उसने छेड़ी, (नोएडा; रेख़ता बुक्स प्रकाशन, 2016), पृ.सं.25.

[11]संकलन फ़हरत एहसास, ग़ज़ल उसने छेड़ी, (नोएडा; रेख़ता बुक्स प्रकाशन, 2016), पृ.सं.51.

इसी दौर को उर्दू शायरी का स्वर्णकाल कहा गया। इस दौर की ख़ासियत यह है कि इस जमाने के अधिकांश शायर सूफ़ी पंथ को मानते थे। इनकी ग़ज़लों में सूफ़ी पंथ के पवित्र विचारों का भी विवरण मिलता है। इस दौर के अन्य शायर **सौज़, दर्द, असर, ताबाँ, यकीं, क़ायम, चांदपुरी, बेदार, बयान, अफसोस, जिया** आदि हुए।

इसी युग के उत्तरार्द्ध के शायर हैं **मुसहफ़ी, इंशा, जुरअत, रासिख़, हविस, शहीदी, रंगीन** इत्यादि। इस दौर में दिल्ली के मुगलिया सल्तनत का चिराग टिमटिमा रहा था और शायर दिल्ली छोड़कर लखनऊ, रामपुर, फ़ैज़ाबाद आदि नगरों में पनाह ले रहे थे। फ़र्क इतना ही पड़ा कि उर्दू शायरी का स्तर कुछ गिर गया, अश्लीलता उभरने लगी, शायरी हल्की–फुलकी होने लगी और ह्रदय की धड़कनों और भावनाओं का बयान कम होकर स्त्री के बनाव, श्रृंगार, नख़रे, नाजो–अदा तथा शारीरिक उतार चढ़ाव का वर्णन कुछ ज्यादा ही होने लगा। ग़ज़ल फिर से रीतिकालीन या अरबी प्रवृत्ति की ओर झुक गई।

''दुपट्टे को आगे से न दुहरा ओढ़ो
नुमदार चीजें छुपाने से क्या हासिल''[12]

इस तरह ग़ज़ल में अश्लीलता का ये दौर ज्यादा दिन तक आवाम को कुबूल नहीं हुआ और उसी समय उर्दू ग़ज़ल को **ग़ालिब, ज़ौक़, मोमिन बहादुरशाह जफ़र, शाहनसीर, आर्जूदा, मम्नून, असीर, अमानत, ज़र्की,** आदि शायर मिले और जिन्होंने शायरी की खूबसूरती में चार चाँद लगा दिये। ग़ालिब ने ग़ज़ल में दार्शनिकता भर दी, ज़ौक़ ने आसान लफ़्जों–बयानी, मोमिन ने प्यार की खूबसूरती और ज़फ़र ने बदनसीबी की टीस भर दी जिससे ग़ज़ल के विषय में बदलाव की झलक दिखने लगी।

''ग़में–हस्ती का 'असद' किससे हो ज़ुज़ मर्ग इलाज
शम्मा हर रंग में जलती है शहर होने तक।''[13]
– ग़ालिब

''लाई हयात आये क़जा ले चली चले
अपनी खुशी न आये, न अपनी खुशी चले।''[14]
– ज़ौक़

''वो जो हममे तुममे करार था, तुम्हें याद हो कि न याद हो
वही वादा, यानी निबाह का, तुम्हें याद हो कि न याद हो।''[15]
– मोमिन

---

[12]डॉ. ज़रीना सानी एवं डॉ. विनय वाईकर, आईना–ए–ग़ज़ल, (नागपुर; श्री मंगेश प्रकाशन, 2002), रूदादे–ग़ज़ल.
[13]डॉ. ज़रीना सानी एवं डॉ. विनय वाईकर, आईना–ए–ग़ज़ल, (नागपुर; श्री मंगेश प्रकाशन, 2002), रूदादे–ग़ज़ल.
[14]डॉ. ज़रीना सानी एवं डॉ. विनय वाईकर, आईना–ए–ग़ज़ल, (नागपुर; श्री मंगेश प्रकाशन, 2002), रूदादे–ग़ज़ल.
[15]डॉ. ज़रीना सानी एवं डॉ. विनय वाईकर, आईना–ए–ग़ज़ल, (नागपुर; श्री मंगेश प्रकाशन, 2002), रूदादे–ग़ज़ल.

''कितना है बदनसीब 'ज़फ़र' दफ़्न के लिये
दो गज़ ज़मीन भी न मिली कू-ए-यार में।''
– ज़फ़र

इस दौर में ग़ज़ल का सूरज अपनी पूरी शान से चमक रहा था। मुगलिया सल्तनत का सूरज डूब रहा था और अंग्रेजी हुकूमत का आफ़्ताब उफ़क़ पर उभर रहा था। अंग्रेजी हुकूमत आई और साथ ही शायरी की चाल भी मचल गई। इस समय ग़ज़ल की खिदमत की **दाग, अमीर मीनाई, असीर, अमानत, जलाल, आज़ाद, शेफ़्ता, नसीम, हाली** और अन्य शायरों ने। दाग ने उस्ताद शायर होने का रुत्बा हासिल किया। दाग के शागिर्द हुए **साइल देहलवी, बेख़ुद देहलवी, आगा साइर, सीमाब, नूर नारवी, सर मोहम्मद इक़बाल** इत्यादि सबने ग़ज़ल के विकास के आधार को जमाने की कोशिश की।

इस तरह ग़ज़ल अपने पंख फैलाती हुई सम्पूर्ण भारत में अपनी ख्याति जमाती हुई आगे बढ़ रही थी। तभी ग़ज़ल को काफ़ी गहरा झटका लगा। आज़ादी की जंग शुरू हो गई थी। दूसरा महायुद्ध ज़हर उगल रहा था। ग़रीबी, बेकारी और भूख मुँह बाये खड़ी थी और इंसानियत की जगह देश में हैवानियत फैल गई थी। जब्तशुदा नज़्म और बतनपरस्ती के गीत लिखे जाने लगे और नाजुक मिज़ाज वाली इश्किया ग़ज़ल घूंघट ओढ़ कर चिलमन के पीछे छिप गई और उसमें क्रांति, घुटन, आजादी की छटपटाहट का स्वर अंकुरित होने लगा।

''सरफरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है
देखना है ज़ोर कितना बाज़ु-ऐ-क़ातिल में है।''[16]
– बिस्मिल

''सारे जहाँ से अच्छा हिंदूस्ताँ हमारा
हम बुलबुले हैं इसकी, यह गुलिस्ताँ हमारा।''[17]
– इकबाल

जंग खत्म हुई, आज़ादी हासिल हुई और ग़ज़ल चिलमन के पीछे से निकल कर फिर से इठलाने लगी। **जिगर मुरदाबादी** और **हसरत मोहानी** ने महबूब को खयाली दुनिया से निकालकर चलती-फिरती दुनिया में लाकर खड़ा किया। पुरानी शायरी में महबूब सिर्फ महबूब था, कभी आशिक न बना था। इन दो शायरों ने उसे महबूब तो माना, साथ ही उसे एक मुकम्मल इंसान बना कर उसके दिल में चाहत भर दी और दूसरों से प्यार मोहब्बत की आरज़ू भी रख दी।

[16]सं. शाहिना तबस्सुम, उर्दू शायरी : एक चयन, (दिल्ली; सस्ता साहित्य मण्डल, 2015), दो शब्द.
[17]सं. शाहिना तबस्सुम, उर्दू शायरी : एक चयन, (दिल्ली; सस्ता साहित्य मण्डल, 2015), दो शब्द.

''ये इश्क नहीं आसाँ इतना समझ लीजे
इक आग का दरिया है और डूब के जाना है।''[18]
– जिगर मुरदाबादी

''चुपके चुपके रात दिन आँसू बहाना याद है
हमको अब तक आशिक़ी का वो ज़माना याद है।''[19]
– हसरत मोहानी

उर्दू ग़ज़ल ने पर्शियन का ढांचा तो अपना लिया लेकिन उसका विषय वह पीछे छोड़ती चली गई और इस तरह उर्दू ग़ज़ल अब सिर्फ दरबारों की भाषा नहीं रही अपितु जन संपर्क और जन के दुख–सुख की भी भाषा बनी। आज़ादी के बाद भारत विभाजन की त्रासदी हुई और पाकिस्तान बना और इस उपक्रम में पाकिस्तानी उर्दू शायरी और शायरों ने भी अपना स्थान बनाया। पाकिस्तान के निर्माण के बाद उर्दू भाषा वहाँ की राष्ट्र भाषा हुई और ग़ज़ल अपने पुराने अंदाज में वहाँ भी कामयाब हुई। पाकिस्तानी साहित्यकारों में नयी प्रतिभावान और प्रतिष्ठित कवयित्रों ने काफ़ी शिरकत की और महिलाओं ने भी अपनी प्रमुख भूमिका निभाई और शायद यही वह पहला दौर है जहाँ ग़ज़ल साहित्य में स्त्री सहभागिता की शुरुआत हुई। जिनमे **अदा जाफरी, परवीन शाकिर** प्रमुख हैं।

''आखिरी टीस आज़माने को
दिल तो चाहा था मुस्कुराने को
हाथ काँटों से कर लिए ज़ख़्मी
फूल बालों में एक सजाने को।''
– अदा ज़ाफरी

''मैं क्यों उसको फोन करूँ
उसके भी तो इल्म होगा
कल शब, मौसम की पहली बारिश थी।''
– परवीन शाकिर

इन महिला ग़ज़लकारों के अलावा **किश्वर नाहीद, फातमा हसन, ज़ेहरा निगाह, परवीन फ़ना सैयद** आदि प्रमुख हुई और आज के इस दौर में बहुत अधिक मात्रा में महिलाओं ने अपनी उपस्थिति दर्ज कराई और बेहतरीन ग़ज़ल लिखने की कड़ी को बरकरार रखा है।

[18]डॉ. ज़रीना सानी एवं डॉ. विनय वाईकर, आईना–ए–ग़ज़ल, (नागपुर; श्री मंगेश प्रकाशन, 2002), रुदादे–ग़ज़ल.
[19]डॉ. ज़रीना सानी एवं डॉ. विनय वाईकर, आईना–ए–ग़ज़ल, (नागपुर; श्री मंगेश प्रकाशन, 2002), रुदादे–ग़ज़ल.

पाकिस्तान की सर–ज़मी में मशहूर शायरों में **फ़ैज अहमद फ़ैज, अहमद नदीम कासमी, सलीम बेताब, अहमद फराज़, नासिर काज़मी, अनवर शऊर, इफतिखार आरिफ़, ज़हूर नज़र, अहतर नफ़ीस, एहसान दनिश, मुहशीन भोपाली, साहबा अख़्तर** आदि सुप्रसिद्ध ग़ज़लकार हुए जिन्होंने पाकिस्तान की ज़मीन में जन्म तो लिया लेकिन दौलत, इज्जत और शोहरत इन्हें भारत में मिली।

इस तरह ग़ज़ल अपने आधुनिक दौर में प्रवेश कर गई। यह दौर फ़िल्म और फ़िल्मी गाने और उनके रिकार्ड से जुड़ा हुआ है। इसी दौर को डॉ. विनय वाईकर **'त्रिवेणी संगम युग'** नाम देते हैं। यह बताते हैं कि त्रिवेणी संगम में तीन बाते होनी चाहिए– शब्द, स्वर और संगीत। आज़ादी मिलते ही मुंबई नगरी में फ़िल्म जगत का जन्म हुआ। ग़ज़ल बड़ी आसानी से उस दुनियाँ में घुल–मिल गई क्योंकि ग़ज़ल की तबीयत रूमानी थी और मिज़ाज आशिक़ाना था। **जिगर सफ़दर, अली सरदार जाफ़री, मजरूह सुल्तानपुरी, शकील बदायूनी, साहिर लुधियानवी, राजा मेहदी अली ख़ान शैलेंद्र** जैसे बेहतरीन शायर थे। **सज्जाद, अनिल बिस्वास, नौशाद, मदन मोहन, शंकर–जयकिशन, खय्याम, सी. रामचंद्रन** और **एस.डी. बर्मन** जैसे संगीतकार थे और **कुन्दनलाल सहगल, मोहम्मद रफ़ी, तलत महमूद, मुकेश, लता, मुबारक बेगम, शमशाद बेगम, आशा भोसले** और **सुमन कल्याणपुर** जैसे फनकार थे। इस तरह इन ग़ज़लगो के ज़रिए ग़ज़ल रेडियो और रिकार्ड के माध्यम से पूरे भारत में घर–घर घुस गई और हर दिल अजीज हो गई। ग़ज़ल लिखने वाले ग़ज़लकारों ने जितना नाम ग़ज़ल लिखकर नहीं कमाया उससे ज्यादा दौलत सोहरत ग़ज़ल गायकों ने गाकर प्राप्त किया है। यह ग़ज़लकारों की बदकिस्मती थी कि जो ग़ज़ल उन्होंने लिखी आज भी आवाम उनके गाने वाले गायकों के नाम से ही जानते हैं।

ग़ज़ल ऐसे सम्पूर्ण भारत में ज़िंदगी की तल्ख हकीकत को अवाम के सामने परोसने लगी और दर्द–ए–दिल में मरहम लगाने लगी, आवाम को सुकून देने लगी। आज उर्दू ग़ज़ल बेपर्दा होकर शायरों के साथ गली, कूँचे और राजपथ पर घूमने लगी है, सवाल पूछने लगी है, जबाब भी देने लगी है और आज उर्दू–हिंदी दोनों भाषाओं में ग़ज़ल कहने की परंपरा का विकास समकालीन उर्दू ग़ज़लकार कर रहे हैं जिनमें से प्रमुख हैं– **मुनव्वर राना, राहत इंदौरी** आदि।

"लिपट जाता हूँ माँ से और मौसी मुस्कुराती है,
मैं उर्दू में ग़ज़ल कहता हूँ और हिंदी मुस्कुराती है"[20]
– मुनव्वर राना

[20]मुनव्वर राना, माँ, (दिल्ली; राजकमल प्रकाशन, 2015), पृ.सं. 12.

मुनव्वर राना वर्तमान उर्दू ग़ज़ल की वह सख्शियत हैं, जिन्होंने हिंदी–उर्दू के झगड़े को खत्म करने का काम किया। उर्दू ग़ज़ल ने सादगी की सीढ़ी पकड़कर समाज के यथार्थ की सच्चाई को बयां करने की अथक कोशिश की है और यही कारण है कि आज उर्दू में लिखी जाने वाली ग़ज़लें या उर्दू का ग़ज़लकार हिंदी पाठकों का एक अभिन्न हिस्सा बन चुका है। आज उर्दू–हिंदी का भेद धीरे–धीरे खत्म होता जा रहा है जिसका प्रमुख कारण है सीधी–सहज–सरल भाषा का प्रयोग जो जन–जीवन तक सफलतापूर्वक पहुँच रहा है।

निष्कर्षत: ग़ज़ल का विकास पर्शियन से होता हुआ उर्दू, हिंदवी, रेख़ता, मसनवी, या हिंदोस्तानी तक का सफ़र तय किया।

1. प्राध्यापक, हिन्दी विभाग
डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय
सागर (म.प्र.)
2. शोधार्थी, हिन्दी विभाग
डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय
सागर (म.प्र.)

सन्दर्भ ग्रंथ सूची:

1. डॉ. अमरनाथ (2015), हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, दिल्ली : राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. 1–बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली–110002.
2. डॉ. हरदेव बाहरी (2010), राजपाल हिंदी शब्दकोश, दिल्ली : राजपाल एंड संज, कश्मीरी गेट, दिल्ली–110006.
3. एस.एन. शर्मा एवं एम. खान, (2011), उर्दू हिंदी अंग्रेजी शब्दकोश, दिल्ली : अशोक प्रकाशन 2615, नई सड़क, दिल्ली–110006.
4. सं. राम प्रकाश सक्सेना, (2015), बर्धा हिंदी शब्दकोश, दिल्ली : भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशक, 18, इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली–110003.
5. सं. मुहम्मद मुस्तफा खाँ 'माद्दाह', (2012), उर्दू हिंदी शब्दकोश, लखनऊ : उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, राजर्षि पुरुषोत्तम टंडन हिंदी भवन 6, महात्मा गांधी मार्ग, लखनऊ.
6. डॉ. गिरीराज शरण अग्रवाल – डॉ. मीना अग्रवाल, (2010), शोध संदर्भ–5, प्रकाशक : हिंदी साहित्य निकेतन, 16 साहित्य बिहार बिजनौर, उत्तर प्रदेश.
7. सं. फ़हरत एहसास, (2016), ग़ज़ल उसने छेड़ी, नोएडा : रेख़ता बुक्स प्रकाशन, दिल्ली.
8. विवेक, ज्ञान प्रकाश, (2012), हिंदी ग़ज़ल की विकास यात्रा, हरियाणा : हरियाणा ग्रंथ अकादमी, पंचकूला.

9. पाराशर, राजेंद्र, (2011), ग़ज़ल प्रवेशिका, दिल्ली : भारतीय ज्ञानपीठ 18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली–110003.

10. डॉ. नरेश, (2004), हिंदी ग़ज़ल – दशा और दिशा, दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 21–ए, नई दिल्ली–11002.

11. मुजावर, सरदार, (2014), हिंदी ग़ज़ल का वर्तमान दशक, दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 21–ए, नई दिल्ली–11002.

12. डॉ. मुजावर, सरदार, (2010), हिंदी ग़ज़ल की भाषिक संरचना, दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 21–ए, नई दिल्ली–11002.

13. मुजावर, सरदार, (2001), हिंदी ग़ज़ल ग़ज़लकारों की नज़र में, दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 21–ए, नई दिल्ली–11002.

14. डॉ. सानी, ज़रीना, और डॉ. विनय वाईकर, (2002), आईना–ए–ग़ज़ल, नागपुर : श्री मंगेश प्रकाशन, 23, रामदासपेठ, तरुण भारत प्रकाशन प्रेस के पास, नागपुर–440010.

15. सं. साहिना तबस्सुम एवं कुलदीप सलिल, (2015), उर्दू शायरी : एक चयन, दिल्ली : सस्ता साहित्य मण्डल, एन–77, पहली मंजिल, कनॉट सर्कल, नई दिल्ली–110001.

16. डॉ. सरस्वती पाण्डेय एवं गोविंद पाण्डेय, (2014), हिंदी भाषा एवं साहित्य का वस्तुनिष्ठ इतिहास, इलाहाबाद : अभिव्यक्ति प्रकाशन, 847/995, विश्वविद्यालय मार्ग, इलाहाबाद.

17. राना, मुनव्वर, (2015), माँ, दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 21–ए, नई दिल्ली–11002.

हिन्दी हिमालय से
लेकर कन्या कुमारी तक
व्यवहार में आने वाली
भाषा है।

– राहुल सांकृत्यायन

उर्दू और हिन्दी का रिश्ता

– डॉ. वसीम अनवर

उर्दू एक आम भारतीय भाषा है। यह वह भाषा है जिसमें भक्तों, संतों और सूफियों ने एकेश्वरवाद के गीत गाए, भाईचारे की शिक्षा दी और लाखों–करोड़ों लोगों के दिलों को आध्यात्मिकता और सच्ची मानवता के संदेश से भर दिया। इस प्रकार यह भाषा किसी धर्म या सम्प्रदाय की भाषा नहीं है। बल्कि यह हर भारतीय की भाषा है। उर्दू और हिंदी का आधार एक ही है, यही कारण है कि हजारों दूरियां पैदा करने के बावजूद उनके आपसी संबंध खत्म नहीं हुए हैं, बल्कि आज भी उर्दू और हिंदी में कई शब्द और ध्वनियां एक ही हैं, क्रियाएं और मुहावरे एक ही हैं। उर्दू की लगभग छत्तीस ध्वनियों में से केवल छः अरबी–फ़ारसी से ली गई हैं, बाकी उर्दू–हिन्दी में प्रचलित हैं।

इसी प्रकार, उर्दू फ़ारसी, अरबी और हिंदी शब्दों को मिलाकर सैकड़ों यौगिक बनाती है जो मूलतः एक जैसे होते हैं। जैसे डाकख़ाना, अजाइबघर, गुलाबजामुन, सब्ज़ी मंडी, घर दामाद, थानेदार, घड़ीसाज़ का उपयोग कौन नहीं करता? इसमें उर्दू और हिंदी में क्या अंतर हो सकता है? ये सभी दोनों भाषाओं में समान रूप से रचे बसे हुए हैं। आपको यह जानकर और भी आश्चर्य हो सकता है कि प्रारंभिक साहित्यिक पूंजी भी दोनों भाषाओं में एक ही है। अमीर खुसरो की पहेलियाँ, रानी केतकी की कहानी, बेताल पच्चीसी आदि उर्दू और हिन्दी की प्रिय राजधानियाँ हैं।

उर्दू और हिन्दी का प्रारंभिक इतिहास एक समान है। दोनों खड़ी बोली पर आधारित हैं। जहां प्राचीन उर्दू पंजाबी और हरियाणवी से काफी प्रभावित है, वहीं प्राचीन हिंदी ब्रज और अवधी से प्रभावित है। भगतों और सूफियों ने अलग–अलग समय में उर्दू और हिंदी का समर्थन किया। कवियों व लेखकों ने कलात्मक शक्ति प्रदान की। गुरु नानक, नामदेव, कबीर और अमीर खुसरो जैसे महान भक्तों और सूफियों ने इसे संरक्षण दिया, जबकि सूरदास, मुहम्मद कुली कुतुब शाह, वली, मीर अम्मन और नज़ीर जैसे असंख्य कवियों और लेखकों ने इस आम भाषा के विकास में योगदान दिया।

सभी जानते हैं कि शुरुआती दौर में उर्दू भाषा के हिंदवी, हिंदी, हिंदुस्तानी जैसे अलग–अलग नाम थे। इसे देहलवी, गुजरी, दक्कनी, रेख्ता, ज़बान–ए–हिंद और उर्दू ए मुअल्ला के नाम से भी जाना जाता था। 18वीं शताब्दी के अंत में इसे उर्दू भाषा का नाम दिया गया। शम्सुर्रहमान फ़ारूक़ी के अनुसार उर्दू के प्रारंभिक काल को इसके साहित्यिक उत्पादन और इतिहास के पहलू से सिद्ध किया जा सकता है:

'उर्दू का इस्तिमाल अठारवीं सदी के रुबा आख़िर के पहले नहीं मिलता। ज़बान के नाम के तौर पर इस लफ़्ज़ उर्दू की ज़िंदगी ग़ालिबन 'ज़बान उर्दू–ए–मुअल्ला शाहजहाँ आबाद की शक्ल में शुरू हुई। और इस से मुराद थी शाहजहाँ आबाद के शहर–ए–मुअल्ला/क़िला–ए–मुअल्ला/दरबार–ए–मुअल्ला की ज़बान'। ऐसा लगता है कि शुरू शुरू में इस फ़िकरे से हमारी उर्दू ज़बान नहीं, बल्कि फ़ारसी मुराद ली जाती थी। मुरूर अय्याम के साथ ये फ़िक़रा मुख़्तसर हो कर ''जबान उर्दू–ए–मुअल्ला, फिर 'ज़बान उर्दू', और फिर 'उर्दू रह गया'।''[1]

भाषाविदों के अनुसार, उर्दू एक आधुनिक इंडो–आर्यन भाषा है और इसकी मूल खड़ी बोली 10वीं और 11वीं शताब्दी ईस्वी में दिल्ली और पश्चिमी उत्तर प्रदेश के ज़्यादातर हिस्सों में बोली और समझी जाती थी। मुस्लिम शासकों की भाषा पर खड़ी बोली का गहरा प्रभाव था। तेरहवीं शताब्दी तक, खड़ी बोली ने फ़ारसी, अरबी, तुर्की और नई दिल्ली की अन्य बोलियों के प्रभाव को स्वीकार कर लिया था और एक नई भाषा बन गई थी, जिसके शुरुआती उदाहरण अमीर खुसरो के लेखन में पाए जाते हैं। अगली तीन शताब्दियों में इसका अनुसरण गुजरात और दक्कन में किया गया। 18वीं सदी तक यह भाषा जन समुदाय की भाषा के साथ–साथ शायरी की आम भाषा भी बन गई थी। इस समय तक शुमाली भारत में उर्दू के अलावा ब्रज और अवधी भी विकसित भाषाएँ थीं और उनमें शायरी की परंपरा भी थी।

18वीं शताब्दी ई. में अंग्रेजों ने ईस्ट इंडिया कंपनी के माध्यम से भारत में अमल दखल शुरू किया। उसने भारत को जीतने की योजना बनाई जिसके लिए उसने षडयंत्र रचने शुरू कर दिये। कलकत्ता में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना कर भाषाई संघर्ष को जन्म दिया, 18वीं शताब्दी के अंत में जब अंग्रेजों ने भारत के अधिकांश भाग पर अपनी पकड़ मजबूत कर ली, तो उन्होंने फूट डालो और राज करो की रणनीति को अपने शासन का आधार बनाया। जब ब्रिटिश अधिकारियों को यह एहसास हुआ कि यहां के दो प्रमुख क़ौमें एक–दूसरे से मिलकर जूझने को तैयार हैं और स्थानीय भाषाएं, जो राजनीतिक जागरूकता का साधन थीं, प्रगति करते–करते विद्रोही अभिव्यक्ति का प्रतीक बन गईं, तो उन्होंने भाषाओं के खिलाफ भी साजिशें शुरू कर दीं। नाम का सहारा लेकर हिंदी को हिंदुओं की प्राचीन भाषा और उर्दू को मुसलमानों की भाषा कहा गया। आगे चलकर अंग्रेजों ने अपनी साजिशों के तहत उर्दू–हिन्दी विवाद पैदा किया। इस विवाद के विस्तार में न जाकर उर्दू और हिंदी की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि बताना अधिक महत्वपूर्ण लगता है, जिससे दोनों के बीच स्थिर संबंधों की परंपरा का पता चलता है।

जब दक्कन में खड़ी बोली उर्दू, फारसीयत से दामन बचाते हुए विकसित हो रही थी, उस समय उत्तर भारत में ब्रजभाषा ने फारसी प्रभाव को स्वीकार कर जन–संचार की भाषा बनने के साथ–साथ एक अनूठी एवं प्रामाणिक भाषा के रूप में स्थापित हो हुई। और फिर जब उत्तर और दक्षिण एक हो गये तो बोली जाने वाली उर्दू का धारा आगे बढ़ चला।

हिन्दी और उर्दू दोनों का आधार एक ही है। ये दोनों खड़ी बोली के दो रूप हैं। प्रारम्भ से लेकर 18वीं शताब्दी ई. तक हिन्दी और उर्दू में अन्तर महसूस नहीं किया जा सका। भाषा या लिपि के नाम को लेकर कोई समस्या नहीं थी। 18वीं सदी में दोनों के बीच अंतर महसूस होने लगा। यह अंतर संस्कृत और फ़ारसी के गहरे प्रभाव और लिपि से उजागर हुआ।

मौलवी अब्दुल हक़ इस बारे में बजा तौर पर लिखते हैं:

'कई सदी से फ़ारसी की तालीम का रिवाज आम था। ये किसी एक मुक़ाम से मख़सूस ना था बल्कि बंगाल, बिहार, दोआबा, पंजाब, गुजरात, दक्कन, मद्रास सभी जगह ये राइज थी, हमारे अख़लाक़–ओ–आदाब, तौर–तरीक़े, नशिस्त–ओ–बर्ख़ास्त, तर्ज़–ए–कलाम वग़ैरा पर फ़ारसी का असर साफ़ नज़र आता था और ये सब मुस्लमानों ही पर मौक़ूफ़ ना था। हिंदू मुस्लमान सब एक ही रंग में रंगे हुए थे। बात बात पर फ़ारसी इमसाल और जुमले, सादी–ओ–हाफ़िज, रूमी–ओ–जामी या ख़ुसरो के अशआर बेसाख़्ता ज़बान से निकल जाते थे। गुलसिताँ बोसतां, दीवान हाफ़िज, यूसुफ़ ज़ुलेख़ा, सिकन्दर नामा और शाह–नामे का पढ़ना क़ौमी शआर हो गया था। हर घर में ये किताबें नज़र आती थीं। इस वक़्त के हिंदू मुसन्निफ़ीन के यहां भी वही तर्ज़–ए–बयान वही तर्ज़–ए–तहरीर शेअरी इस्तिलाहात तो क्या हदीस–ओ–कुरआन तक बे–तकल्लुफ़ लिख जाते। इस ज़माने की किताबों के मुताला से किसी तरह मालूम नहीं हो सकता कि ये किसी मुस्लमान की लिखी हुई नहीं है। क़ौमी यगानगत में तहज़ीब की यकसानी का बहुत बड़ा असर होता है।' [2]

जैसे–जैसे फ़ारसी का प्रभाव कम हुआ, भारत की सबसे प्राचीन भाषा संस्कृत का प्रभाव बढ़ने लगा। इसके साथ ही देवनागरी लिपि का चलन भी बढ़ा। इस प्रकार फ़ारसी लिपि में फ़ारसी आमेज़ खड़ी बोली को उर्दू कहा गया और देवनागरी लिपि में संस्कृत आमेज़ खड़ी बोली को हिंदी नाम मिला।

ब्रिटिश अधिकारियों को भारतीय भाषा और संस्कृति से परिचित कराने के लिए कलकत्ता में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना की गई। 1800 में स्थापित, भारतीय भाषा विभाग का नेतृत्व डॉ. जॉन गिलक्रिस्ट ने किया था। कॉलेज में अंग्रेजी पढ़ाने के लिए किस्से कहानियों की कई किताबें लिखी गईं, ज्यादातर किताबें अन्य भाषाओं से अनुवादित की गईं। इस प्रकार, उर्दू गद्य के विकास में फोर्ट विलियम कॉलेज की सेवाओं को सभी ने मान्यता दी है। लेकिन इसका दूसरा पक्ष यह है कि इस कॉलेज का इस्तेमाल अंग्रेजों ने अपने साम्राज्यवादी और औपनिवेशिक उद्देश्यों के लिए किया। भाषाई भेदभाव के बीज कॉलेज के माध्यम से बोए गए थे। साम्राज्यवादियों ने देखा कि फ़ारसी भारत की विभिन्न क्षेत्रीय बोलियों में केंद्रीय दर्जा रखती थी, इसने भारतीयों को भाषा और संस्कृति की एकता में बांध दिया। अतः उन्होंने साझी सभ्यता की इस एकता को तोड़ने के उद्देश्य से आम जनता की भाषा यानी उर्दू को फ़ारसी के

साथ मिला कर उसे मुग़लों की भाषा घोषित कर दिया। दूसरी ओर संस्कृतनिष्ठ खड़ी बोली में देवनागरी लिपि में पुस्तकें लिखवाईं। इन पुस्तकों ने बोली की एक ऐसी शैली को लोकप्रिय बनाया जो संस्कृतनिष्ठ होने के कारण सामान्य स्थानीय भाषा से भिन्न थी। यहीं से ब्रिटिश अधिकारी उर्दू और हिंदी के दो अलग–अलग रास्ते स्थापित करने में सफल रहे। सामान्य भाषा में विभेदीकरण की इस प्रक्रिया के परिणामों का वर्णन डॉ. राम आसरा राज़ ने इस प्रकार किया है:

''इस से पहले उर्दू हिन्दी की मिलवां ज़बान के जो नमूने मिलते हैं उनमें अरबी, फ़ारसी और संस्कृत के मिले जुले अलफ़ाज़ के इस्तिमाल से वो इजतिनाब नहीं पाया जाता था जो बाद की दोनों मख़सूस ज़बानों में उमूमन पाया जाने लगा। नासिख़ की तहरीक इस्लाह्–ए–ज़बान ने उर्दू फ़ारसी अलफ़ाज़ की कसरत का रुजहान तो पैदा कर ही दिया था, लल्लूलाल जी की प्रेम सागर ने हिन्दी में संस्कृत अलफ़ाज़ की भरमार के रुजहान को और भी ज़्यादा शह दी। रफ़्ता–रफ़्ता दोनों ज़बानों में ये काबिल–ए–अफ़सोस रुजहानात इस हद तक बढ़ते गए कि हिन्दी वाले अरबी फ़ारसी के आम फहम अलफ़ाज़ के इस्तिमाल से गुरेज़ करने लगे और उर्दू वालों को संस्कृत के तद्भव, यानी तरमीम शुदा अलफ़ाज़ जो उर्दू की सरिश्त में रच बस गए थे, का इस्तिमाल भी नागवार गुज़रने लगा।''[3]

फोर्ट विलियम कॉलेज ने क्षेत्रीय भाषाओं को बढ़ावा देने की आड़ में भाषाई विभाजन और धार्मिक नफरत को भड़काने का काम किया। अंग्रेजों की यही भाषाई नीति शैक्षिक भाषा के संबंध में भी संचालित थी। लॉर्ड मैकाले की अनुशंसा पर निचले स्तर पर भारतीय भाषाओं को तथा उच्च स्तर पर अंग्रेजी को शिक्षा का माध्यम घोषित किया गया। क्षेत्रीय भाषाओं को बढ़ावा देने के बहाने अंग्रेजी भाषा का वर्चस्व स्थापित करने का प्रयास किया गया। उनका यह प्रयास भी आगे बढ़ा और सफल रहा।

भाषाओं का कोई धर्म नहीं होता, धर्म ही भाषाओं के मोहताज होते हैं। भारत में साम्राज्यवादी ताकतों और विभाजन की राजनीति द्वारा भाषाओं को धर्म से जोड़ दिया गया। हम दिन–प्रतिदिन देखते हैं कि भारत में सभी हिंदू हिंदी नहीं बोलते हैं। इसी तरह, उर्दू सभी भारतीय मुसलमानों की भाषा नहीं है। बांग्ला हिंदू और मुस्लिम दोनों की भाषा है। कर्नाटक और तमिलनाडु में मुसलमान कन्नड़ और तमिल बोलते हैं। यदि भाषा का कोई धर्म होता तो दुनिया में उतनी भाषाएँ होती जितनी दुनिया में धर्म हैं, लेकिन ऐसा नहीं है।

उर्दू हिन्दी की एकता पर मुंशी प्रेमचंद अपने विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं:

'जिस तरह हिन्दुओं की हिंदी का रूप विकसित हो रहा था, उसी तरह मुसलमानों की हिंदी का रूप भी बदलता जा रहा था। लिपि तो शुरू से ही अलग थी, ज़बान का रूप भी बदलने लगा। मुसलमानों की संस्कृति ईरान और अरब की है, जिसका ज़बान

पर असर पड़ने लगा। अरबी और फ़ारसी के शब्द आ-आकर मिलने लगे, यहाँ तक की आज हिंदी और उर्दू दो अलग-अलग सी ज़बानें हो गयीं हैं। एक तरफ़ हमारे मौलवी साहेबान अरबी और फ़ारसी के शब्द भरते जाते हैं, दूसरी ओर पंडितगण, संस्कृत और प्राकृत के शब्द ठूंस रहे है और दोनों भाषाएँ आवाम से दूर होती जा रही हैं।''[4]

उन्नीसवीं सदी के आरंभ में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना से लेकर स्वतंत्रता प्राप्ति तक के लगभग डेढ़ सौ वर्षों के काल को कुछ लोग हिंदी और उर्दू के बीच प्रतिस्पर्धा का काल कह सकते हैं, लेकिन बहुमत ने दोनों के बीच घनिष्ठ संबंधों की सराहना की और समर्थन किया। इस संबंध में महात्मा गांधी का निम्नलिखित उद्धरण बहुत अहमियत रखता है:

''हिन्दी भाषा में उसे कहता हूँ जिसे उत्तर में हिंदू और मुस्लमान बोलते हैं और जो देवनागरी या उर्दू लिखावट में लिखी जाती है हिन्दोस्तान के उत्तरी हिस्से में मुस्लमान और हिंदू दोनों एक ही भाषा बोलते हैं। फ़र्क़ सिर्फ पढ़े लिखों ने पैदा किया है। यानी पढ़े लिखे हिंदू, हिन्दी को संस्कृत भरी बना डालते हैं। नतीजा ये होता है कि बहुत से मुस्लमान उसे समझ नहीं पाते। लखनऊ के मुस्लमान भाई फ़ारसी लदी उर्दू बोल कर उसे ऐसी शक्ल दे देते हैं कि हिंदू नहीं समझ सकते। ये दोनों ग़ैर ज़बानें हैं और आम जनता के बीच उनकी कोई जगह नहीं।''............''हिन्दुस्तानी का मतलब उर्दू नहीं बल्कि हिन्दी और उर्दू की वो ख़ूबसूरत मिलावट है जिसे उत्तरी हिन्दोस्तान के लोग समझ सकें और जो नागरी या उर्दू लिखावट में लिखी जाती हो। ये पूरी राष्ट्रभाषा है, बाक़ी जो कुछ है वो अधूरा है। पूरी राष्ट्रभाषा सीखने वालों को अब दोनों ही लिखावटें सीखनी चाहिऐं। राष्ट्र प्रेम का ठीक यही तक़ाज़ा है।''[5]

उर्दू भाषा और साहित्य गंगा जमनी तेहज़ीब की पैदावार है। उर्दू को हिंदी से अलग करना उचित नहीं है। उर्दू और हिंदी का प्राचीन इतिहास सिद्ध करता है कि दोनों ने एक साझी सभ्यता विकसित की। अरबी, फ़ारसी और संस्कृत के विद्वान अमीर खुसरो सूफी संगीत के विशेषज्ञ थे और स्थानीय भाषाओं के प्रति उनका विशेष लगाव था। उनकी वाणी में खड़ी बोली और फ़ारसी के शब्दों का मिश्रण मिलता है। इसीलिए उन्हें एक ही समय में हिंदी और उर्दू दोनों भाषाओं के पहले कवि के रूप में पहचाना जाता है। साहित्यिक और सांस्कृतिक लेन-देन के कारण साझी साहित्यिक और सांस्कृतिक परंपराएं फलती-फूलती रहीं। उदाहरण के लिए, उर्दू काव्य की विधाएं जैसे ग़ज़ल, कसीदा, मसनवी, मर्सिया आदि फ़ारसी से ली गई हैं, जबकि बारा मासा, गीत और दोहे हिंदी से लिए गए हैं।

साहित्यिक और सांस्कृतिक स्तर पर उर्दू और हिंदी में अंतर है, लेकिन भाषाई स्तर पर वे जुड़वाँ बहनों की तरह करीब हैं। दोनों के व्याकरण, वाक्यविन्यास, ध्वन्यात्मक और शाब्दिक स्तरों में समानता इसका प्रमाण है। इस समानता को देख कर कुछ लोग उर्दू को हिंदी की ही एक शैली कहने लगते हैं जो तर्क संगत नहीं है, इस ताल्लुक से कुलदीप कुमार लिखते हैं:

''कुछ लोग इसीलिए सद्भावनावश और कुछ अन्य दुर्भावनावश हिन्दी और उर्दू को एक ही भाषा की दो शैलियाँ मानते हैं और उनके बीच लिपिभेद को ही बुनियादी भेद समझते हैं क्योंकि हिन्दी को देवनागरी लिपि में लिखा जाता है और उर्दू को फ़ारसी और अरबी के मिश्रण से बनी लिपि में। जो लोग सद्भावनावश ऐसा कहते हैं, उनका उद्देश्य दोनों भाषाओं की साझी विरासत और परंपरा को रेखांकित करना और दोनों को एक-दूसरे के करीब लाना होता है, लेकिन जो लोग दुर्भावनावश ऐसा कहते हैं। उनका लक्ष्य उर्दू को भी हिन्दी की एक शैली बताकर उसे हिन्दी के भीतर ही समेट लेना है।''(6)

दुनिया की सभी विकसित भाषाओं की तरह उर्दू के विकास और अस्तित्व का रहस्य इसकी सार्वभौमिकता और अपने आस-पास की भाषाओं और बोलियों के शब्दों को अपनाने और आत्मसात करने में निहित है। जो इसके अस्तित्व का विशेष कारण भी रहा है। इस प्राकृतिक सिद्धांत के तहत वह आज भी विकास के पथ पर अग्रसर है। उर्दू पहले दिन से ही भारत में बोली जाने वाली सभी भाषाओं से जुड़ी रही है, और आज अरबी, फ़ारसी, संस्कृत, हिंदी और यहां तक कि अंग्रेजी शब्दों से भी जुड़ी हुई है।

उर्दू और हिंदी भारत की दो प्रमुख आर्य भाषाएँ हैं। दोनों का प्रारंभिक इतिहास समान है। दोनों खड़ी बोली पर आधारित हैं। प्राचीन उर्दू पर पंजाबी और हरियाणवी का गहरा प्रभाव है, जबकि प्राचीन हिंदी पर ब्रज और अवधी रंग का प्रभुत्व है। इतिहास के विभिन्न कालों में भगतों और सूफीसंतों ने उर्दू और हिंदी का समर्थन किया। कवियों और लेखकों ने रचनात्मक ऊर्जा प्रदान की। गुरुनानक, नामदेव, कबीर और अमीर खुसरो जैसे महान भगतों और सूफियों ने इसका संरक्षण किया, सूरदास, अब्दुल रहीम खान ए खाना, रस खान, जायसी, मुहम्मद कुली कुतुब शाह, वली, मीर अम्मन और नज़ीर जैसे असंख्य कवियों और लेखकों ने इस आम भाषा के विकास में हिस्सा लिया। 18वीं शताब्दी तक उर्दू और हिंदी अलग नहीं हुई थी। लिपि में अंतर के साथ-साथ हिंदी विभिन्न नामों जैसे हिंदी, उर्दू-ए-मुअल्ला, हिंद्वी आदि के तहत विकसित होती रही। 19वीं शताब्दी की शुरुआत में फोर्ट विलियम कॉलेज के प्रभाव में एक महत्वपूर्ण अंतर उभरा। हिंदी और उर्दू के बीच भेद अंग्रेजों ने शुरु किया था। अंग्रेजों द्वारा उर्दू को मुगलों की बनाई भाषा और हिंदी को हिंदुओं की भाषा घोषित करने के बावजूद उर्दू साहित्य ने साझा संस्कृति की व्याख्या करने और धर्मनिरपेक्ष परंपराओं को कायम रखने का गुण बरकरार रखा। लंबे समय तक साथ-साथ सफर करने के बाद आज उर्दू और हिंदी दो अलग-अलग भाषाओं के रूप में विकसित हो चुकी हैं। हालांकि दोनों की साहित्यिक परंपरा अलग-अलग है, लेकिन दोनों की भाषाई साझीदारी उनके बुनियादी रिश्तों की मजबूती का सबूत है। दोनों में स्वरों का सही सामंजस्य है। वाक्य रचना एक जैसी है। कार्यों और समासों की एक समान व्यवस्था है। कहावतों और लोकोक्तियों में भी पूरी एकता है। इस लिहाज से उर्दू और हिंदी प्रतिद्वंद्वी नहीं बल्कि पूरक भाषाएं हैं जिनमें जुड़वा बहन का रिश्ता है और दोनों एक-दूसरे की ताकत हैं। इस संबंध में गोपीचंद नारंग का क़ौल हर्फ़ ए आखिर का दर्जा रखता है:

''मैं उर्दू वालों को समझाता हूं कि डेढ़ ईंट की मस्जिद अलग मत बनाओ। तुम हिंदी से अलग नहीं हो। तुम्हारी सबसे बड़ी ताक़त हिंदी है। तुम इस धरती की पैदावार हो। उर्दू की 70 प्रतिशत शब्दावली देसी है जबकि केवल 30 प्रतिशत अरबी फ़ारसी की है। इसी तरह मैं हिन्दी वालों से भी कहता हूं कि उर्दू तुम्हारी सबसे बड़ी ताक़त है। उर्दू और हिंदी में नाख़ून और गोश्त का रिश्ता है जो अलग हो ही नहीं सकता।''[7]

संदर्भ:

1. उर्दू का इबतिदाई ज़माना शमसुर्रहमान फ़ारूकी, आज, कराची 2009, स16
2. मरहूम दिल्ली कॉलेज अब्दुल हक़, अंजुमन तरक़्की उर्दू (हिंद) नई दिल्ली,1989, इशाअत सोम, स23-24
3. उर्दू और हिन्दी का लिसानियाती रिश्ता डॉक्टर राम आसरा राज़, जमाल प्रिंटिंग प्रैस, जामा मस्जिद, दिल्ली,1975, स53
4. https://hindikahani.hindi-kavita.com/Hindi-Urdu-Ki-Ekta-Munshi-Premchand.php
5. मुशतर्का ज़बान मोहनदास करम चंद गांधी अंजुमन तरक़्की उर्दू (हिंद), अलीगढ़ स8
6. https://www.dw.com/hi/%E0%A4%B9%E0%A4%BF%E0%A4%A8%E0%A5%8D%E0%A4%A6%E0%A5%80-%E0%A4%94%E0%A4%B0-%E0%A4%89%E0%A4%B0%E0%A5%8D%E0%A4%A6%E0%A5%82-%E0%A4%95%E0%A4%BE-%E0%A4%B0%E0%A4%BF%E0%A4%B6%E0%A5%8D%E0%A4%A4%E0%A4%BE/a-17220090
7. https://www.bbc.com/hindi/entertainment/2009/06/090626_gopi_va_tc2

सहायक प्राध्यापक
उर्दू एवं फ़ारसी विभाग
डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय
सागर (म.प्र.)

आप जिस तरह बोलते हैं,
बातचीत करते हैं,
उसी तरह लिखा भी कीजिए।
भाषा बनावटी नहीं होनी चाहिए।

– महावीर प्रसाद द्विवेदी

विलक्षण मेरी क्यूरी

– डॉ. सुमीता

मैडम मेरी क्यूरी हमारे संसार की एक दुर्लभ परिघटना हैं। मानवता की शाख पर खिला एक बहुत ही सुन्दर, सुगन्धित फूल! अकल्पनीय संघर्ष और आशातीत सफलता का अन्यतम उदाहरण हैं वे। उनके संघर्ष की प्राथमिक वजह उनका स्त्री होकर जन्म लेना था। आधुनिक वैज्ञानिक संसार में कुछ बेहतरीन कार्य करने और बहुत सी सफलताएँ 'पहलेपहल' प्राप्त करने का श्रेय उन्हें जाता है। उनके नाम के साथ बहुत से रिकॉर्ड्स जुड़े हुए हैं। जैसे वे पहली महिला हैं जिन्होंने फ्रांस में शोधकार्य पूरा किया और पेरिस विश्वविद्यालय में प्रोफेसर बनीं। वे नोबेल पुरस्कार प्राप्त करने वाली पहली महिला हैं। विज्ञान की दो विभिन्न शाखाओं, भौतिकी और रसायनशास्त्र, में दो बार नोबेल पुरस्कार प्राप्त करने वाले वे पहली और एकमात्र व्यक्ति हैं। उनके ही शोध का परिणाम है कि विज्ञान में 'रेडियोएक्टिविटी' नाम की एक नयी शाखा शुरू हो गई। रेडियोएक्टिविटी शब्द भी उन्होंने ही गढा है। दो रेडियोएक्टिव तत्वों, पोलोनियम और रेडियम की खोज करने का श्रेय उनके नाम है जिनमें रेडियम का उपयोग बाद में चिकित्सा के क्षेत्र में भी किया जाने लगा। यह कैंसर जैसी जानलेवा बीमारी के इलाज में बहुत उपयोगी साबित हुआ।

इन रेडियोएक्टिव तत्वों से विसर्जित होने वाली रेडियोएक्टिव विकिरणों के अत्यधिक सम्पर्क में रहने की वजह से ही उनका असमय देहांत हो गया। उनके देहावसान ने इन रेडियोएक्टिव तत्वों और इनकी विकिरणों के अधिक सम्पर्क में रहने के खतरे के प्रति भी सचेत किया। मैडम मेरी क्यूरी के द्वारा इस्तेमाल में लाई जाने वाली हर वस्तु इन रेडियोएक्टिव तत्वों और इनकी विकिरणों की वजह से बेहद ख़तरनाक हो चुकी है। उनके बाद उनकी प्रयोगशाला हमेशा के लिए बंद कर दी गई है। उनकी पांडुलिपियाँ भी बहुत एहतियात से रखी गई हैं ताकि कोई उनके संपर्क में ना आ सके। यहाँ तक कि जिस ताबूत में उनका शव रखा गया है, उस पर भी मोटे शीशे का आवरण चढ़ाया गया है जिससे रेडियोएक्टिव विकिरणों की वजह से आसपास के क्षेत्र पर पड़ने वाले दुष्प्रभाव को बचाया जा सके।

मेरी क्यूरी का परिवार और उनकी विरासत भी अद्‌भुत है। मेरी का पियरे क्यूरी जैसा पति पाना भी बहुत सौभाग्य की बात रही। पियरे क्यूरी नोबेल पुरस्कार प्राप्त एक जाने-माने भौतिक विज्ञानी तो थे ही, वे एक विरल प्रजाति के पति भी साबित हुए। मेरी का परिवार एक ऐसा परिवार हुआ जिसमें मेरी क्यूरी की विरासत को अगली पीढ़ियों ने आगे बढ़ाया है। इस परिवार के पाँच सदस्यों को नोबेल पुरस्कार मिल चुका है। आइए, इस विलक्षण व्यक्तित्व के बारे में विस्तार से जानते हैं।

मेरी का बचपन

7 नवम्बर 1867 को पोलैण्ड के वारसॉ में जन्मीं मेरी स्क्लाडोवस्का क्यूरी अपने माता–पिता की पाँचवी व सबसे छोटी संतान थी। माता–पिता द्वारा दिया उनका असल नाम मारिया था जो फ्रांस जाने के बाद मेरी हो गया। घर में उन्हें मानिया बुलाया जाता था। उनसे बड़ी चार और बहनें थी: जोफिया, जोजेफ, ब्रोनिस्लावा और हेलेना। वारसॉ उन दिनों पोलैण्ड की राजधानी थी और पोलैण्ड तब रूसी साम्राज्य के अधीन था। मेरी के बचपन के दौर में उनके ननिहाल और ददिहाल दोनों ही पक्षों का परिवार अपनी सारी संपत्ति गवाँ चुका था। कारण था इस परिवार का रूसी साम्राज्य की गुलामी से अपने देश, पोलैण्ड, को मुक्त कराने सम्बन्धी राष्ट्रवादी गतिविधियों में शामिल होना। इसके परिणाम से मेरी और उनकी बड़ी बहन ब्रोनिस्लावा की पढ़ाई–लिखाई और भविष्य पर अंधकार के बादल छा चुके थे।

मेरी की माता, ब्रोनिस्लावा नी बोगास्क और पिता, व्लाडिस्लो स्क्लाडोवस्की, दोनों ही शिक्षक थे। पिता गणित और भौतिकी विषय पढ़ाया करते थे और वारसॉ में लड़कों के लिए दो माध्यमिक विद्यालयों, जिन्हें वहाँ जिम्नेजिया कहा जाता था, के डायरेक्टर थे। जब रूसी अधिकारियों ने किसी पोलिश शिक्षक द्वारा विद्यालय में विज्ञान विषयक प्रयोग करवाने पर पाबंदी लगा दी, तो मेरी के पिता प्रयोगशाला के सभी उपकरणों को घर ले आए थे। मेरी की माता भी लड़कियों के लिए एक प्रतिष्ठित आवासीय विद्यालय चलाया करती थी। मेरी के जन्म के बाद उन्होंने इस्तीफा दे दिया था। मेरी जब सात साल की थी तो उनकी सबसे बड़ी बहन जोफिया का इंतकाल हो गया और जब वे 10 साल की थी, उनकी माता टीबी की मरीज होकर स्वर्ग सिधार गई। इन दुर्घटनाओं का मेरी के बाल मन पर गहरा असर हुआ और ईश्वर के अस्तित्व के विषय में उनके धारणा अज्ञेयवादी हो गई।

10 साल की उम्र में मेरी को जे. सिकोर्सका के आवासीय विद्यालय में पढ़ने भेजा गया। लड़कियों के इस जिम्नेजियम से 12 जून, 1883 को मेरी ने 12वीं की परीक्षा गोल्ड मेडल के साथ उत्तीर्ण की। लेकिन उच्च शिक्षा के लिए उन्हें और उनकी बहन ब्रोनिस्लावा को किसी सामान्य संस्थान में दाखिला नहीं मिल सकता था क्योंकि वे महिलाएँ थी। इसलिए ये दोनों बहने क्लेन्डेस्टिना फ्लोटिंग (अथवा फ्लाइंग) यूनिवर्सिटी से जुड़ीं। फ्लोटिंग विश्वविद्यालय किसी एक निश्चित स्थान पर अवस्थित ना होकर विभिन्न स्थानों पर चलाया जाता था। यह विश्वविद्यालय एक पोलिश राष्ट्रवादी संस्थान था जो उच्च शिक्षा में महिलाओं को दाखिला देता था। महिला विद्यार्थी ऐसे विश्वविद्यालयों में छुप–छुप कर पढ़ा करती थी। लेकिन इस तरह से पढ़ाई करना इन दोनों बहनों को रास नहीं आ रहा था। दोनों बहनों ने तय किया कि छोटी बहन मरिया दो सालों तक अपनी बड़ी बहन को पेरिस में मेडिकल की पढ़ाई के लिए आर्थिक मदद करेगी। बदले में दो सालों के बाद मेरी की पढ़ाई में बड़ी बहन ऐसी ही मदद करेगी। इस सिलसिले

में मेरी ने ट्यूशन पढ़ाए और अपने पिता के एक परिवारिक रिश्तेदार ज़ोरावस्की परिवार के घर गवर्नेस का काम किया।

इस घर में कार्य करते हुए घर के बेटे काज़ीमिर्ज़ ज़ोरावस्की जो बाद में विश्वविख्यात गणितज्ञ हुए, से उन्हें प्रेम हो गया। हालाँकि यह सम्बन्ध शादी में तब्दील नहीं हो सका क्योंकि ज़ोरावस्की परिवार अपने बेटे की शादी किसी कंगाल नौकरानी से नहीं कर सकता था। बेटा भी घरवालों की मर्जी के विपरीत जाकर शादी करने का फ़ैसला नहीं कर सकता था। काज़ीमिर्ज़ ज़ोरावस्की से सम्बन्ध का टूटना दोनों के लिए बहुत दुःखद था। काज़ीमिर्ज़ ज़ोरावस्की आगे चलकर क्राकोव यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर और रेक्टर और फिर वारसॉ पॉलिटेक्निक में गणित के प्रोफेसर बने। बाद में वे रेडियम इंस्टिट्यूट के बाहर निर्मित मेरी की प्रतिमा के सामने अक्सर ध्यानस्थ बैठे पाए जाते थे। यह रेडियम इंस्टिट्यूट भी मेरी ने ही वहाँ 1932 में बनवाया था।

वादे के अनुसार मेरी की बड़ी बहन ब्रोनिस्लावा ने उन्हें आगे की पढ़ाई के लिए पेरिस बुलाया। इस बीच ब्रोनिस्लावा एक पोलिश चिकित्सक व राजनैतिक–सामाजिक कार्यकर्ता काज़ीमिर्ज़ दलुस्की से शादी भी कर चुकी थी। लेकिन मेरी को पेरिस पहुँचने में डेढ़ साल लग गए क्योंकि उनके पास विश्वविद्यालय की फीस चुकाने भर के पैसे नहीं थे। पिता ने उनकी आर्थिक मदद की लेकिन इस दौरान भी वे एक अन्य परिवार के लिए गवर्नेस का काम करती रहीं और साथ ही उन्होंने किताबें पढ़कर, पत्राचार द्वारा और ट्यूशन की मदद से अपनी शिक्षा की निरंतरता बनाए रखा। वारसॉ के पुराने शहर के पास औद्योगिक और कृषि सम्बन्धी अजायबघर में एक रासायनिक प्रयोगशाला थी जिसे उनका एक चचेरा भाई जोज़ेफ़ बोगस्की चलाया करता था। यह चचेरा भाई कभी सेंट पिट्सबर्ग में प्रख्यात रूसी रसायनविद् दमित्री मेंडलीव का सहयोगी रह चुका था। इसी प्रयोगशाला में मेरी अपने शुरुआती वैज्ञानिक प्रयोग किया करती थीं। 1891 के उत्तरार्ध में वे पेरिस चली गईं।

पेरिस में उच्च शिक्षा

पेरिस में बहन के साथ मेरी कुछ ही दिन रहीं। फिर वे पेरिस विश्वविद्यालय के करीब ही किराए पर रहने लगीं। पेरिस विश्वविद्यालय से उन्होंने भौतिकी, रसायनशास्त्र और गणित की उच्च शिक्षा प्राप्त की। आर्थिक तंगी और कम–से–कम संसाधनों में जीवन निर्वाह करने का यह दौर उनके लिए काफी कठिन था। यहाँ तक कि उनके पास गर्म कपड़े भी नहीं थे। ठंड से बचने के लिए वे अपने सभी कपड़े पहन कर सोया करती थी। लेकिन वे अपनी पढ़ाई में इस कदर डूबी रहती थी कि कभी–कभी तो खाना भी भूल जाती थी। वे दिन में पढ़ाई करती और शाम को ट्यूशन पढ़ाया करती थी जिससे उन्हें थोड़ी–बहुत कमाई हो पाती थी। 1893 में उन्हें भौतिकी में डिग्री हासिल हुई और उन्होंने गैब्रियल लिप्पमैन की औद्योगिक प्रयोगशाला में कार्य करना शुरू

किया। एक फैलोशिप मिल जाने से वे पेरिस विश्वविद्यालय में आगे भी अध्ययन जारी रख सकीं और 1894 में उन्हें दूसरी डिग्री मिली।

मेरी ने अपने वैज्ञानिक करियर के शुरुआत 'सोसाइटी फॉर द इनकरेजमेंट ऑफ नेशनल इंडस्ट्री' द्वारा चलाए जाने वाले कार्यक्रम के अंतर्गत विभिन्न तरह के इस्पातों में चुम्बकीय गुणों की खोजबीन से शुरू किया। इसी साल वसंत में उनकी मुलाकात पियरे क्यूरी से हुई। उन दिनों पियरे क्यूरी 'द सिटी ऑफ पेरिस इंडस्ट्रियल फिजिक्स एंड केमिस्ट्री हायर एजुकेशनल इंस्टीट्यूट' में प्रशिक्षक थे। वैज्ञानिक अभिरुचि और वैज्ञानिक शोधों के प्रति अत्यधिक रुझान होने ने इन्हें धीरे–धीरे एक–दूसरे के प्रति आकर्षित किया। उन दिनों मेरी एक बड़े प्रयोगशाला की खोज में थी। इसी सिलसिले में मेरी की पहचान के एक पोलिश भौतिक वैज्ञानिक जोजेफ वायरोज कोवलस्की ने पियरे क्यूरी से उनकी मुलाक़ात करवाई थी। पियरे क्यूरी तब तक एक भौतिक वैज्ञानिक के रूप में प्रसिद्ध हो चुके थे और जोजेफ कोवलस्की उनके बहुत बड़े प्रशंसक थे। यूँ तो पियरे क्यूरी की प्रयोगशाला बहुत बड़ी नहीं थी, लेकिन मेरी को अपने काम भर जगह मिल सकती थी। पियरे अपनी प्रयोगशाला में मेरी को एक विद्यार्थी के तौर पर ले आए और धीरे–धीरे वे मेरी की प्रतिभा, विज्ञान के प्रति समर्पण और लगनशीलता के कायल होते गए। अपनी जीवन संगिनी के रूप में वे जैसी स्त्री की आकांक्षा रखते थे, मेरी में उन्हें वे सारे गुण नज़र आने लगे थे।

उन्होंने मेरी के सामने विवाह का प्रस्ताव रखा जिसे शुरू में मेरी ने इनकार कर दिया था क्योंकि वे पोलैण्ड वापस जाना चाहती थी। पियरे क्यूरी उनके साथ पोलैण्ड जाकर बसने को भी राज़ी थे। मेरी पोलैण्ड चली गई। लेकिन उनकी आशा के विपरीत क्राकोव विश्वविद्यालय ने उन्हें काम देने से इनकार कर दिया, क्योंकि वे महिला थी। पियरे क्यूरी के भेजे एक पत्र ने उन्हें पेरिस आकर पीएचडी करने को प्रेरित किया।

मेरी के शब्दों में, 'वर्ष 1894 में पियरे क्यूरी ने मुझे कई पत्र लिखे जो अपने आप में बड़े प्यारे थे। उनमें से कोई भी बहुत लम्बा नहीं था क्योंकि उन्हें बहुत संक्षेप में अपनी बात कहने की आदत थी। उन सभी पत्रों में गम्भीरता और गर्मजोशी की झलक थी और उनमें अपनी आकांक्षा के अनुरूप किसी ऐसे साथी, जो उन्हें ठीक वैसा ही समझ सके जैसे वे हैं की खोज की स्पष्ट चिंता थी।'

पोलैण्ड में एक साल रहकर मेरी पेरिस लौट आई। 26 जुलाई, 1895 को मेरी और पियरे विवाह बंधन में बंध गए। पियरे के लिए मेरी उनकी म्यूज़ बन गई, तो पियरे के रूप में मेरी को एक प्यारा और समर्पित जीवनसाथी मिला। और साथ ही मिला एक वैज्ञानिक साझेदार जिस पर वे पूरा भरोसा कर सकती थी। और यहाँ से वह दौर शुरू हुआ जो दुनिया के विज्ञान में ज्ञान का एक नया अध्याय जोड़ने का बायस बना।

मेरी का शोधकार्य

1895 में ही विल्हेल्म रोंटजन ने एक्सरे की खोज की थी। 1896 में हेनरी बेक्वेरल ने यह खोज की थी कि यूरेनियम के लवण ख़ास तरह की किरणें विसर्जित करते हैं, जिनकी बेधक शक्ति एक्सरे जैसी ही होती है और ये किरणें ऊर्जा के किसी बाह्य स्रोत से नहीं, बल्कि यूरेनियम के परमाणु से ही स्वतः विसर्जित होती हैं। इन दोनों खोजों से प्रेरित होकर मेरी क्यूरी ने अपने शोध के लिए यूरेनियम किरणों पर ही कार्य करना सुनिश्चित किया। मेरी ने अपने शोध के लिए प्रयोगों की बिल्कुल निजी कार्यशैली को अपनाया। वे इस बात का महत्व अच्छी तरह समझती थीं कि शोध करने के साथ ही शोधपत्र का प्रकाशन भी बहुत ज़रूरी है और इसके लिए वे हमेशा तत्पर रहीं। वे अपने अनुभवों से यह भी अच्छी तरह जान चुकी थीं कि अधिकतर लोग यह विश्वास ही नहीं करेंगे कि एक महिला किसी तरह की वैज्ञानिक खोज कर सकती है। चूँकि उनके पति भी भौतिक वैज्ञानिक थे इसलिए मेरी अपने निजी कार्यों की पहचान को लेकर हमेशा स्पष्ट रहीं। जिन दिनों मेरी अपने शोधकार्य में व्यस्त थीं, उन दिनों पियरे क्रिस्टलों पर कार्य कर रहे थे। इसी बीच 1897 में मेरी ने अपनी पहली बेटी आयरीन को जन्म दिया।

रेडियोएक्टिव तत्वों की खोज

1898 में मेरी ने यह सिद्ध किया कि थोरियम नामक तत्व भी रेडियोएक्टिव है। मेरी ने यह भी अवधारणा दी कि परमाणु भी टूट सकता है जिसके बारे में मान्यता थी कि यह टूट नहीं सकता। मेरी की खोजों ने पियरे क्यूरी को इतना प्रभावित किया कि वे अपना शोधकार्य छोड़कर मेरी के शोध से संयुक्त हो गए।

वैज्ञानिक दम्पती मेरी और पियरे क्यूरी ने 1898 में ही एक नए रेडियोएक्टिव तत्व की महत्त्वपूर्ण खोज की। मेरी ने अपने प्यारे देश पोलैण्ड के नाम पर इस तत्व का नाम रखा 'पोलोनियम'। कुछ ही महीने बाद उन्होंने एक और रेडियोएक्टिव तत्व 'रेडियम' की खोज भी की। आगे चलकर चिकित्सा विज्ञान और रोगों के उपचार में यह एक महत्वपूर्ण क्रान्तिकारी खोज साबित हुई। 1903 में मेरी क्यूरी ने पीएचडी पूरी कर ली। इसी वर्ष रेडियोधर्मिता की खोज के लिए पियरे क्यूरी और हेनरी बेक्वेरल को भौतिकी का नोबेल पुरस्कार दिए जाने की घोषणा हुई लेकिन पियरे क्यूरी ने नोबेल समिति को एक पत्र द्वारा सूचित किया कि वे नोबेल पुरस्कार तभी ग्रहण कर सकते हैं जब उनकी पत्नी मेरी क्यूरी को भी इस पुरस्कार में बराबर का भागीदार बनाया जाए, अन्यथा नहीं क्योंकि रेडियोएक्टिविटी यानी रेडियोधर्मिता की खोज में मेरी का बहुत महत्वपूर्ण योगदान है। यहाँ तक कि रेडियोएक्टिविटी शब्द भी मेरी का ही दिया हुआ है। आख़िरकार नोबेल समिति ने इस खोज के लिए इन तीनों वैज्ञानिकों को एक साथ पुरस्कृत किया।

किसी पति द्वारा पत्नी के वाजिब योगदानों का श्रेय दिलाने के लिए इस तरह किए गए प्रयत्न की भी यह एक दुर्लभ ऐतिहासिक घटना बनी। 1904 में मेरी ने दूसरी बेटी ईव को जन्म दिया। इस दंपति का शोधकार्य भी निर्बाध चल रहा था। कभी–कभी यह बहुत थकाऊ और ऊबाऊ होता। कई बार निराशा हाथ लगती, तो कई बार छोटी–मोटी दुर्घटनाएँ हो जातीं। और इसी बीच मेरी की ज़िन्दगी में तबाही की वह घटना घटी जिसने उनकी दुनिया ही बदल डाली।

मेरी के निजी संसार में तबाही का ताण्डव

19 अप्रैल, 1906 के दिन पेरिस में एक सड़क पार करते हुए 46 वर्षीय पियरे क्यूरी एक घोड़ागाड़ी की चपेट में आकर इसके पहियों से कुचल गए और तत्क्षण ही उनकी मृत्यु हो गई। पति की यूँ अचानक मृत्यु से मेरी बुरी तरह टूट गयीं। मेरी के शब्दों में, 'अचानक वह भयानक तबाही आई जिसने मेरे पति को मुझसे छीन लिया और मैं अपने बच्चों को पालने और अधूरे शोध कार्यों को पूरा करने के लिए अकेली रह गई। मेरे पति की मृत्यु ठीक उस समय हुई थी, जब उनके द्वारा किए जा रहे खोजों के बारे में आम लोगों को जानकारी हो चुकी थी और ख़ासकर वैज्ञानिक समुदाय के लिए तो यह एक महत्वपूर्ण अपूरणीय राष्ट्रीय क्षति थी ही।'

13 मई, 1906 को पेरिस विश्वविद्यालय के भौतिक विज्ञान विभाग ने मेरी को वह चेयर प्रदान करने की पेशकश की जो उन्होंने उनके स्वर्गीय पति पियरे क्यूरी के लिए निर्मित किया था। मेरी ने यह प्रस्ताव इस उम्मीद से स्वीकार कर लिया कि वे यहाँ अपने पति के नाम पर एक विश्व–स्तरीय प्रयोगशाला का निर्माण करा पाएँगी। इस तरह उन्हें पेरिस विश्वविद्यालय में पहली महिला प्रोफेसर होने का गौरव प्राप्त हुआ। ज़िन्दगी में आई रिक्ति से उबरने की कोशिश में वे फिर से अपने शोधकार्यों में निमग्न हो गईं।

दूसरा नोबेल पुरस्कार

1911 में उन्हें रसायन विज्ञान के क्षेत्र में रेडियम के शुद्धीकरण (आइसोलेशन ऑफ प्योर रेडियम) के लिए रसायनशास्त्र का नोबेल पुरस्कार मिला। विज्ञान की दो शाखाओं में नोबेल पुरस्कार से सम्मानित होने वाली वे पहली और एकमात्र वैज्ञानिक हैं। जब रेडियम की खोज हुई तब किसी को भी पता नहीं था कि यह अस्पतालों में भी उपयोगी साबित होगा। यह परिशुद्ध वैज्ञानिक खोज थी। इसने यह भी साबित किया कि किसी भी वैज्ञानिक खोज को इस नजरिए से नहीं देखना चाहिए कि यह तत्काल उपयोगी सिद्ध होगा।

प्रथम विश्व युद्ध और मेरी के उपचार–कार्य

प्रथम विश्व युद्ध के दौरान घायल सैनिकों के उपचार में सेना के डॉक्टरों की मदद करने

के उद्देश्य से मेरी को घुमन्तू रेडियोलॉजिकल केन्द्रों की रचना का विचार आया। इस सम्बन्ध में सभी तरह की जानकारियों और एक्सरे–उपकरणों व गाड़ी आदि से लैस होने में उन्हें कुछ महीने लगे और वे अपनी 17 वर्षीय बड़ी बेटी आयरीन व एक–दो अन्य सहयोगिओं को लेकर घायल सैनिकों के उपचार हेतु युद्ध–क्षेत्र में जा पहुँची। उनके प्रयत्नों से युद्ध के पहले ही वर्ष में धीरे–धीरे वहाँ लगभग 200 घुमन्तू रेडियोलॉजिकल केन्द्र कार्य करने लगे। मेरी ने कई महिलाओं को इस कार्य के लिए प्रशिक्षित भी किया। 1915 में मेरी ने 'रेडियम एमेनेशन' नामक एक रंगहीन रेडियोएक्टिव गैस, जिसे बाद में 'रेडॉन' कहा गया, की खोखली सूइयाँ निर्मित की। इनसे संक्रमित उत्तकों का निश्चेतन किया जा सकता था। इसके लिए जरूरी रेडियम मेरी ने अपने एक ग्राम रेडियम में से दिया था। उस समय एक ग्राम रेडियम की कीमत एक लाख डॉलर थी। एक अनुमान के अनुसार घुमन्तू रेडियोलॉजिकल केन्द्रों ने दस लाख से अधिक सैनिक–मरीजों का उपचार किया था। युद्ध सम्बन्धी अपने अनुभवों को उन्होंने 'रेडियोलॉजी इन वॉर' नामक पुस्तक में दर्ज किया है।

सम्मान और उपाधियाँ

राष्ट्रीय आपदा समझकर इतने बड़े स्तर पर मानवता के लिए किए गए उनके प्रयत्नों के लिए फ्रांसीसी सरकार ने उन्हें कोई सरकारी सम्मान नहीं दिया, जबकि दुनियाभर में उनके कार्यों की भूरि–भूरि प्रशंसा हुई और वे अनगिनत सम्मानों और अनेकानेक उपाधियों से सम्मानित की गईं। उन्हें डेवी मेडल, मेट्टूची मेडल, एक्टोनियन प्राइज, फ्रेंकलिन मेडल जैसे अनेक सम्मानों से नवाज़ा गया। उनके नाम से पहले आदरसूचक 'मैडम' भी ऐसा ही सम्मान है। अल्बर्ट आइंस्टीन ने उनके लिए कहा था कि वे सम्भवतः एकमात्र व्यक्ति हैं जो कीर्ति पाकर भ्रष्ट नहीं हुईं। मेरी के नाम पर ही परमाणु संख्या 96 के तत्व का नाम क्युरियम रखा गया। उनके नाम पर एक उल्कापिण्ड को '7000 क्यूरी' का नाम दिया गया। न जाने कितने सड़कों, पुलों, स्टेशनों, संस्थाओं, पुरस्कारों आदि का नाम उनके नाम पर रखा गया।

विकिरणों के घातक प्रभाव से देहावसान

रेडियोएक्टिव तत्व और एक्सरे की विकिरणें इतनी अधिक ख़तरनाक होती हैं कि इनकी वजह से कई तरह की शारीरिक व्याधियाँ उत्पन्न होने लगती हैं। लेकिन इस तथ्य का पता बहुत बाद में चला। तब तक मेरी का शरीर इन विकिरणों के प्रभाव से खोखला हो चुका था। अप्लेस्टिक अनेमिया से पीड़ित होकर 4 जुलाई, 1934 को फ्रांस के एक सेनिटोरियम में 66 साल की उम्र की मेरी क्यूरी का देहान्त हो गया।

गौरवशाली विरासत

वैज्ञानिक माँ मेरी क्यूरी की बड़ी बेटी आइरीन को उनके पति फ्रेडरिक जोलिएट क्यूरी के साथ 1935 में रसायनशास्त्र का नोबेल पुरस्कार प्राप्त हुआ, तो छोटी बेटी ईव के पति हेनरी रिचर्ड सन लेवोइस को 1965 में शान्ति के लिए नोबेल पुरस्कार मिला। क्यूरी परिवार दुनिया का एकमात्र परिवार है जिसके पाँच सदस्यों को नोबेल पुरस्कार प्राप्त हुआ है। आज भी संसार भर में न जाने कितने विद्यार्थी और प्रशंसक मैडम मेरी क्यूरी को अपना आदर्श मान उनके पदचिह्नों पर चलने की कोशिश कर रहे हैं।

सर्व सेवा संघ परिसर
राजघाट, वाराणसी (उ.प्र.)

मेरी क्यूरी के कुछ वक्तव्य :

- पूर्णता की चिंता छोड़ दें, क्योंकि यह आप कभी प्राप्त नहीं कर सकते।
- ज़िन्दगी में किसी भी चीज से डरे नहीं, उसे समझें।
- अपनी प्रयोगशाला में कोई वैज्ञानिक सिर्फ तकनीशियन नहीं होता बल्कि वह परियों की कथाओं–सी लगने वाली प्राकृतिक परिघटनाओं से चमत्कृत हुआ एक छोटा–सा बच्चा होता है।
- नोबेल की तरह मैं भी उन लोगों में से हूँ जो यह मानते हैं कि नई खोजें विनाशकारी नहीं, बल्कि मानवता की मददगार होंगी।
- विज्ञान निश्चित रूप से वैश्विक चीज है। यह केवल ऐतिहासिकता की समझ में कमी की बात है कि इसमें राष्ट्रीयता जोड़ी जाती है।

तिरिया चरित्तर

– आशुतोष

पूरा गाँव बंशी काका के दुआर पर जुटा था। उनकी की देह चटाई पर थी। पिछले काफ़ी दिनों से बीमार चल रहे बंशी काका की तबीयत कल रात ज्यादा बिगड़ गयी थी। आनन–फानन में काकी उन्हें बंगाली डॉक्टर के यहाँ ले गयी थीं। साथ में हरीप्रकाश भी था। तमाम जुगत के बाद भी बंशी काका भोर में ही वापसी की यात्रा पर निकल गये। फिर तो उस दिन गाँव की सुबह बंशी काका की मृत्य की खबर के साथ हुयी।

काकी का नैहर सासाराम में था। इसीलिए ससुरा में उन्हें सब सासाराम वाली कहते। हाँ तो सासाराम वाली थीं भी खूब। उनके रात–दिन, उनकी सुबहो–शाम सब खास थे। उनकी हर बात की चर्चा थी। उनके कद्रदानों का कोई ओर–छोर न था। बुढ़ी औरतें सिर में ठंडा तेल लगवाने, समवयस्क स्त्रियां बतरस और नयी उम्र की लड़कियां तरह–तरह के गुन–गिथान सीखने के लिए उनके आगे पीछे हुयी रहतीं। गाँव के पुरुषों का तो पूछना ही क्या था। उन्हें तो सासाराम वाली के दरस–परस का कोई न कोई बहाना चाहिए ही। कुछ नहीं तो बंशी काका का हालचाल जानना ही सही।

बंशी काका की गिनती गाँव के सीधे–सादे लोगों में होती थी। सिधाई का मतलब था कि उनकी किसी से कोई रार–बहेर न था। अपने काम से काम रखते थे। बोलते कम थे। उनके व्यवहार में एक स्थाई संकोच था। जिसके कारण गाँव के बड़े बुजुर्ग उन्हें सज्जन और नये लौंडे एक चूड़ी दब मानते थे। किशोरास्था के पहले चरण में पाँव रखा ही था कि उनके माई–बाबूजी को उनके ब्याह की चिंता सताने लगी। उस चिंता के पीछे बंशी काका की सिधाई ही थी। क्योंकि उनके उम्र के दूसरे लड़के तब तक भैंस की चरवाही या चारा लाने के प्रसंग में एकाध बार गन्ना या अरहर के खेत में किसी सहेली के साथ धरे जाने का मैडल पा चुके होते। उधर बंशी काका थे कि इन प्रसंगों को सुनकर एकदम से लजा जाते थे। तब गाँवों में ब्याह के लिए रोजगार पहली प्राथमिकता नहीं थी। जैसे ही लड़के भरसाड़ की ओर जियादा दिखने लगते थे, तब घर वाले उनके ब्याह की तैयारी शुरू कर देते।

भरसाड़ उन दिनों महिलाओं का पब्लिक स्फेयर हुआ करता था। दोपहर बाद तमाम स्त्रियाँ भुजा भुजाने के लिए चावल, मटर, मक्का आदि अनाज लेकर बागीचे के भरसाड़ में जुट जातीं। अपनी बारी के इंतजार में सास–ननद, जेठ–जेठानी, पास–पडोंस, नात–रिश्तेदार, लगायी–बुझाई आदि से सम्बन्धित चर्चाएँ छिड़ी रहतीं। कुत्ता कार्तिक में दुआर छोड़कर चौराहे पर बैठने लगे और लड़का अगहन में दुआर छोड़कर भरसाड़ में बैठने लगे तो समझ लिया जाता था कि देह की लालसा प्रबल हो चुकी है। तो हुआ यह कि उस बरस बंशी काका भी भरसाड़ की

ओर ताक–झाँक करते देखे जाने लगे। बात उनकी माई तक पहुँची। माई के मार्फ़त बाबूजी को पता चला। दोनों ने बहुत दिनों के बाद एक साथ गाँठ जोड़कर सत्यनारायण की कथा सुनी और रिश्तेदारों के यहाँ बंशी काका के रिश्ते के लिए सूचना भेजी दी गयी।

अगले बरस फागुन के बाद मामला तेज हुआ और गोधन कुटाते ही निमंत्रण–पत्र छप गया। तयशुदा तिथि पर ग्राम–पोस्ट निबुइया निवासी चिरंजीव बंशी कुमार गाजे–बाजे के साथ ग्राम–पोस्ट, झालपट्टी, सासाराम की आयुष्मती रेखा कुमारी को ब्याह कर लाये।

सासाराम वाली रेखा कुमारी को पाकर बंशी काका के माई–बाबूजी को विश्वास हो गया कि हिया से गोहराओ तो देवता–पितर जरुर से सुनते हैं। अरसे से कुम्हलाये सपने अब अंकुरित होने लगे थे। बंशीकुमार तो कई दिन तक कोहबर से निकले ही नहीं। उन्हीं दिनों पूरे गाँव में सासाराम वाली रेखा कुमारी की चर्चा शुरू हुयी थी।

बंशी कुमार और रेखा कुमारी की लगभग दो–तीन वर्ष तक अहर्निश प्रेम–अखाड़ा चलता रहा। बावजूद इसके उनके परिवार के चार से पाँच होने की कोई संभावना नहीं नजर आयी। अब माई एक बार फिर चिंतित रहने लगीं। चिंता के एवज में ओझा, सोखा, पीर–औलिया, देवी–देवता, वैद–हकीम, फ़कीर, शाही दवाखाना से लेकर कस्बे – शहर के डॉक्टरों तक की खूब परिक्रमा की गयीं। पर बात नहीं बनी। धीरे–धीरे सबने सबकुछ ईश्वर पर छोड़ दिया।

उन्हीं दिनों सासाराम वाली को लेकर तरह–तरह की बातें जोर पकड़ने लगीं थीं। भरसाड़ से लेकर ताल–पोखर और चरवाही से लेकर खेत–खलिहान तक बंशी काका और सासाराम वाली की संतानहीनता बतरस का मुख्य विषय बन कर उभरा। उन दिनों बंशी काका से गाँव के लड़के सासाराम वाली को लेकर मजाक करते और वे उदास मुस्कान के साथ चुप रह जाते।

बंशी काका के ब्याह के लगभग छठवें साल उनकी माई और बाबूजी बगल के गाँव के तीर्थयात्रियों के साथ केदारधाम की यात्रा पर गए थे। उस बरस केदारनाथ में भीषण प्राकृतिक हादसा हुआ। फिर कभी माई–बाबूजी लौट कर नहीं आये। काफी दिनों तक उनकी खोजबीन की गयी। फिर थकहार कर उन्हें मरा मान कर प्रतीकात्मक दाह–संस्कार कर दिया गया।

इसका भी पराछित सासाराम वाली को ही लगा। वह सब कुछ सुनती–सहती और हँसती रहतीं। समय के साथ वे अब घर से लेकर बाहर तक का काम–काज सँभालने लगी थीं। बंशी काका के स्वभाव में पहले से ही नमी थी अब वे और धीमे हो गए थे। बहुत हुआ तो घर के बाहर बैठकर रस्सी बटते रहते थे। उधर सासाराम वाली का बात–व्यवहार और प्रखर होता गया। यह सासाराम वाली की ही कोशिश थी कि उनकी खेती गाँव से ऊपर होने लगी। ऐसा तो उनके ससुर के ज़माने में भी कभी नहीं हुआ। सासाराम वाली खूब तेज निकली। इशारे भर में चतुरानन शुकुल का ट्रैक्टर उनके खेत में दहाड़ते नजर आता। नहर में पानी आने पर सबसे

पहले उनके ही खेत में छोड़ा जाता। नहर सूखने पर जब पूरा गाँव हाय–हाय करता और हरिप्रकाश का पंपिंगसेट सासाराम वाली की फसलों को शीतल कर रहा होता। 'अगली खेती आगे–आगे, पिछली खेती पाछे–पाछे' के तर्ज पर सासाराम वाली की खेती आगे–आगे हो रही थी। काकी की तेजी देखकर बंशी काका ने खुद को और समेट लिया। अब वे कहीं आते–जाते नहीं थे। बीच–बीच में कई बार उनके ख़राब तबियत की जानकारी भी आती थी और सासाराम वाली चुपचाप उनको शहर ले जाकर दवा–दारू करा लाती। कई बार उनके साथ हरिप्रकाश भी जाता था। पर बंशी काका को बीमारी क्या है यह उसने कभी किसी को नहीं बताया। इधर काका की देह गलती जा रही थी और काकी की देह और फल–फूल रही थी।

धीरे–धीरे काकी की धमक गाँव में हर तरफ दिखाई देने लगी थी। किसी के घर कोई काज–परोजन हो, हारी–बिमारी हो हर जगह काकी हाजिर। और जब वे होतीं तो सब कुछ उनके हिसाब से होता। गाँव से जब कोई बारात निकलती तब रात में औरतें जलुआ खेलती थीं। जिसमें पुरुषों का प्रवेश वर्जित होता था। काकी जलुआ में तो कहर बरपा देती थीं। सारे रस उनके थे। 'अंगूरी में डसले बिया नागिनियाँ' का विराग हो या 'झुलनी की छैयाँ बलम दुपहरिया बिताय लो' का श्रृंगार हो, काकी जो राग छेड़ती उसमें सबको बहा लेती थीं। जलुआ में उनका लोकप्रिय किरदार वैद का था। जिसमें वे काका का पैंट–बुशर्ट पहनकर वैद बन जातीं और औरतों को लेमनचूस बाँटती। औरतें पूछतीं, 'इससे का होगा वैद जी?' वैद जी बोलते, 'इसे जीभ के नीचे दबा लेना, फिर आवाज कोठरी से बाहर नहीं जायेगा।' यह सुनकर औरतें मुख ढाँप कर हँसतीं।

हरिप्रकाश काकी का ज्यादा मुँहलगा था। खाली समय में वह अक्सर बंशी काका के पास बैठा रहता। काकी से बचा कर उन्हें तम्बाकू बना कर खिलाता। साँझ होने के बाद भी वह काकी के साथ उनके खेत में काम करता देखा जाता और देर रात तक काकी के दालान में खम्भे से टेक लगाए बैठा मिलता। अपने घर तो केवल सोने आता। इसको लेकर कई बार उसके माँ–बाप उसे बरज चुके थे। नया–नया जवान हुआ था किसी के काबू में नहीं आ रहा था। गाँव के दूसरे लोगों को जिन्हें काकी में रूचि थी, वे लोग भी उनकी हरिप्रकाश की नजदीकी से चिढ़ने लगे थे। काकी को लेकर पूरा गाँव दोमुँहा हो गया था। उनकी अनुपस्थिति में जो लोग उनकी निंदा करते वही लोग उनके सामने पड़ते ही घुटने टेक देते।

काकी थीं भी ऐसी। पटवारी, सिपाही, अमीन जैसे सरकारी मुलाजिमों से खड़ी हिंदी में हँस–हँस कर बात करती थीं। उनकी हँसी ऐसी कि मुलाजिम अक्सर अपनी ड्यूटी की राह से भटक जाते थे। उनका एक वाकया खूब चर्चित हुआ था। दरअसल फगुआ का दिन था। बगल गाँव के नन्दलाल का बकरा सरेह में कहीं बिला गया। नंदलाल ने हरिप्रकाश और उसके साथ दो और लड़कों पर बकरा काट कर खा जाने का इल्जाम लगा दिया। थाने में नालिस हुयी। भारी हो हल्ला मचा। दोपहर बाद थाने से दो सिपाही और नायब दरोगा बुलेट से आये। फगुआरों के ढोल–झांझर थम गए। हरिप्रकाश और दूसरे आरोपी लड़कों का कहीं पता नहीं था। पुलिस के

आते ही हरिप्रकाश के माई–बाबू भी घर छोड़कर भाग गए। नायब साहब गरज रहे थे। जैसे पूरे गाँव की तलाशी लेने वाले थे। ठीक उसी समय गजब हो गया। जिसकी चर्चा आज भी होती है। तो हुआ यह कि काले रंग का चस्मा लगाये नायब साहब अपने बुलेट पर बैठे सबकी बऊ की कर रहे थे। उसी समय सासाराम वाली रंग खेलते हुए पहुँची। नायब साहब अचकचा कर रुक गए। कस कर बाँधा हुआ जुड़ा जैसे खुलने को आतुर था। रंग से भीगी हुयी साड़ी सहम कर उनकी देहसे लिपट गयी थी। दरोगा जी ने देखा प्रकृति के सातो रंग काकी की देह के रंग के साथ एकमेक होकर तपन की अष्टपदी रच रहे हैं। उनके कमर के आस–पास का हिस्सा शांत और ठंड़े लोहे की तरह, जिसके आगे दरोगा जी के रायफल की नाल में लगा इस्पात भी पसीना–पसीना हुआ जा रहा था। काकी की भीगी देह का ताप ऐसा कि नायब साहब की देह से भाप उठने लगा था। थोड़ी ही देर में जब सासाराम वाली के छाती के उभार नायब साहब के काले चश्में के नीचे भकुआई आँखों में भालेकी तरह गड़ने लगे तब वे 'माँ–बहन' की राजकीय शब्दावली से उतर कर बोले, 'जी! आप कौन मैडम?'

सासाराम वाली ने अपनी भींगी हुयी साड़ी को कमर के पास थोड़ा ठीक किया, ऐसे जैसे बस सामने वाले का ध्यान वहाँ चला जाय, 'हम हैं सासाराम वाली।'

'हम थाने से आयें हैं, इहाँ हरिप्रकशवा कौन है जो बकरा मार कर खा गया।'

सासाराम वाली की भौंहें थोड़ी हिली नहीं कि नायब साहब ने खुद ही सुधार कर लिया, 'मेरा मतलब है हरिप्रकाश। उसके.... उनके खिलाफ़ शिकायत हुयी है।'

'शिकायत से क्या होता है, आपके पास कवनों एविडेंस है का?'

गाँव वाले के लिए यह भारी अजगुत था। वे पहले तो दरोगा साहब से यूँ बात करने पर ही चौंके हुए थे ऊपर से वो अंग्रेजी बोल रही थी, 'एविडेंस'।

चौंक तो नायब साहब भी गए थे, 'वो मिल जाय तो फिर एविडेंस भी मिल जायेगा।'

सासाराम वाली ने बहुत करीने से अपने भीगें आँचल को कंधे से उतारा और फिर थोड़े नजाकत के साथ वहीं रख दिया, 'शिकायत का क्या है, सिपाही जी चलिए लिखिये मेरी एक शिकायत कि इ दरोगा जी ने मुझे आर–पार देखा है, और हाँ मेरे पास एविडेंस भी है।' यह कह कर सासाराम वाली होठों में ऐसे मुस्कुरायी जिसे आँखें देख नहीं सकतीं पर रूह महसूस कर सकता था।

नायब साहब के पाँव काँपने लगे। वे घबराहट में बुलेट की किक मारने लगे। सासाराम वाली ने नायब साहब की आँखों में देखते हुए बुलेट की चाभी को ऑन किया, 'गाड़ी चालू करने से पहले चाभी लगाना पड़ता है दरोगा जी।'

दरोगा जी की बुलेट स्टार्ट हुयी। दोनों सिपाही उचक कर बैठ गए। बुलेट चल पड़ी।

दरोगा जी ने साइड मिरर में देखा सासाराम वाली एकदम रंगबरसे वाली लग रही थी। वे रुके, मुड़ें और नंदलाल से बोले 'आगे से अपना बकरी–बकरा सब बाँध कर रखो।'

दरोगा जी गये। विपत्ति टली। फगुआरों ने समवेत स्वर में जोगीरा बोला... बोलो सा... रा.. रारा।

खैर! नंदलाल के बकरी–बकरा बंधे हों या नहीं, पर नायब साहब तो बंध गए थे। उसके बाद अक्सर बहुत रात गए गाँव वालों की नीद में एक बुलेट आती थी और भोर होने के पहले लौट जाती थी। उस घटना के बाद सासाराम वाली का रुतबा गाँव में बहुत बढ़ गया था।

पटवारी, कानूनगो, सिपाही सबकी सवारी सासाराम वाली के ही दुआर पर उतरने लगी थी। गाँव के प्रधान ने उनके दुआर पर एक सोलर लाईट और इण्डिया मार्का हैन्डपम्प लगवा दिया था। पंचायत सचिव ने उनके दरवाजे तक आरसीसी की रोड़ ढलवा दिया। चतुरानन शुकुल का ट्रैक्टर भले उनके घर पर रहता पर कल्टीवेटर तो सासाराम वाली की दरवाजे पर ही रखा रहता। हरिप्रकाश और उसकी बजाज प्लेटिना तो सेवा में थे ही।

अब सासाराम वाली ख्याति और कुख्याति के हिंडोले में झूल रही थीं। उनका नाम नायब साहब, पटवारी, कानूनगो, गाँव के प्रधान, पंचायत सचिव, चतुरानन शुकुल सबसे जुड़ गया था। पर इन सबमें हरिप्रकाश का स्थान कुछ ज्यादा ही था। महिलाएँ अब अपनी बेटियों को सासाराम वाली से मिलने–जुलने से बरजने लगीं थीं। पर गौने जानी वाली लड़कियों को थोड़ी छूट रहती। क्योंकि चादर पर सुई–धागे से टह–टह लाल चोंच वाला तोता, तकिये पर अंग्रेजी में स्वीट–ड्रीम और दुलहिन के दरवाजे पर लगने वाले परदे पर बड़े–बड़े अक्षरों में वेलकम लिखने का जैसा सलीका उनके पास था, वह कोई नहीं कर सकता था।

ऐसी बातों को अपने बात–व्यवहार से स्वयं सासाराम वाली हवा भी देती थीं। दुआर पर निसदिन हो रहे उस जुटान को बंशी काका भी टुकुर–टुकुर देखते रहते। देह में अब वैसा काबू नहीं था। पीठ में कभी न मिटने वाली चिलुक समा गया था। जब दर्द उठता था एकदम से मथकर रख देता था। काकी सरसों के तेल में लहसुन, हींग पकाकर मलती थीं। कभी–कभी जब बहुत रात गए दर्द बहुत बढ़ जाता तो बंशी काका को हरिप्रकाश की बजाज प्लेटिना पर बैठाकर कस्बे के बंगाली डॉक्टर के यहाँ ले जातीं। इसके बावजूद काकी को कभी काका के लिए ईमानदार नहीं माना गया। हरिप्रकाश की मोटर साईकिल के निकलने और वापस आने तक गाँव के तमाम लोग रतजगे में रहते।

पिछली रात भी यही हाल था। काका की तकलीफ ज्यादा बढ़ गयी थी। सासाराम वाली ने हरिप्रकाश के साथ काका को लेकर डॉक्टर के यहाँ गयीं थीं। जैसे ही हरिप्रकाश की मोटर साईकिल निकली ग्राम प्रधान तम्बाकू मलते हुए चतुरानन शुकुल के दुआर पर आया। शुकुल जी खटिया पर करवट बदलते मिले।

'सूने कि नहीं बाबा, फिर सवारी निकली है।'

'ए प्रधान का करबो! घोर कलयुग आ गवा है। यही रहा तो एक दिन हरिप्रकाश को बहुत महँगा पड़ेगा।'

'सोलर लाईट, हैंडपंप हम लगाये और पानी पी रहा है हरिप्रकाशवा।'

'खाली हरिप्रकाशे थोड़े है, सब साले पार उतर रहें हैं।'

दूसरी ओर महिलाओं की मण्डली में भी सासाराम वाली पुराण चल रहा था। उनका मत था कि सासाराम वाली ने पूरा गाँव खराब कर दिया है। अब तो इस गाँव की लड़कियों का ब्याह–शादी होना मुश्किल है। रामसुभग की परानी ने कहा कि, 'हरिप्रकाश जइसा काबिल छौंड़ा तो उसी में डूब उतरा रहा है।'

'खाली हरिप्रकाश काहें, ट्रैक्टर बाबा को देखव, आपन हल ओकरे दुआर पर रख आयें, जब मन करे खूब मचमचा कर जोत दें।' यह कह कर उसने अपने हाथ से ऐसा संकेत किया कि सब हँसते–हँसते दुहरी हो गयीं।'

'कवनों केतनो जोते या हेंगा चलाये, बाकिर तो ऊ जमीन पर कुछ नहीं उपजेगा।'

'बाति जमीन का नाहीं है, जोतवइया का है। देखात नाहीं है कि बंशी केतना दिन से बेमार हैं।'

'अरे बेमार–वेमार कछू नाहीं, सब सासाराम वाली का तिरिया चरित्तर है; उसके आगे बड़े–बड़े हरवाह पानी भरें।'

'अरे खाली बंशी की बाति नाहीं है, गाँव भर तो हरवाही कर रहा है, का सबका धार मर गया है।'

इस बात पर सब की सब खिलखिला कर हँसने लगीं। उनकी हँसी में सासाराम वाली के प्रति उपहास और इर्ष्या के मिलेजुले भाव थे।

उस हँसी ठिठोली से दूर उस रात बंगाली डॉक्टर के यहाँ बंशी काका लिटाये गये थे। ड्रिप लगा था। काका बेसुध थे। छाती भाथी की तरह चल रही थी। साँसों के आने–जाने से उनकी पसलियाँ कड़कड़ा उठती थीं। काकी उनका हाथ थामे सुबक रहीं थीं। बंगाली डॉक्टर एक और इंजेक्शन लगाने आये। काकी ने बड़ी अधीरता से पूछा, 'का कह रहे हैं डॉक्टर साहब।'

'अब कहने–सुनने का कुछ नहीं हैं। पेट की तिल्ली बहुत बढ़ गयी है और पीलिया बेकाबू।'

यह सुन काकी रोने लगीं। हरिप्रकाश बाहर से दवा लेकर आया। काकी को यूँ रोते देख सकते में आ गया। कोई कर भी क्या सकता था।

रात का आखिरी पहर होगा। हरिप्रकाश बाहर बेंच पर सो रहा था। काकी की भी आँखें लग गयी थीं। बंशी काका के शरीर में हरकत हुयी और उन्होंने करवट बदलते हुए धीरे से सासाराम वाली को पुकारा। काकी चिहुँक कर उठीं, 'काजी महतो! कुछ कह रहें हैं।' काका उनको ही देख रहे थे। काकी के जान में जान आया। कुछ कहने को हुयीं पर कहने की जगह पर रुलाई आ गयी। काका ने उनके सर पर हाथ रखा, 'हम तुमका कछू नाहीं दे सके।'

'हमके कछू नाहीं चाहीं, बस अपने देंह–जांगर से खड़े हो जाईये ए महतो।'

'अब तो लगता है कि चलने–चलाने की बारी है।' काका की आवाज कांप रही थी।

'ऐसा नाहीं है महतों! अबके बरस अपने खेत में खूब सरसो लगा है। बाँस की तरह खेत में ऊंख खड़ा है, ऊ सब देखना है आपको।'

'ऊ सब तो तुम्हरा उपजाया है, हमसे तो कुछ नहीं उपज सका।' कहते हुए काका की आँखे भर आयीं।

काकी आँचल से उनके आँसू पोछने लगीं, 'ई सब का कह रहे हैं, हमरे में ही कवनों कमी रही होगी।'

'ना, तुम्हरे में कवनों कमी नाही रहा, तूँ तो धरती बनी, बादल बन बरसी, हमही पाछे छूट गए।'

'कमी हमरे में हो चाहें आप में हो, हम एक दूसरे से अलग हैं का। जो हमरा है, ऊ सब आपका है और जो आपका है, ऊ सब हमरे सर माथे पर।'

काकी की बात सुनकर काका फूट–फूट कर रोने लगे। काकी उनको चुप कराते हुए उनके ही जितना रोती रहीं। काका बहुत कोशिश कर रुक–रुक कर कह रहे थे, 'ई रोग बहुत तकलीफ देता है। बर्दाश्त नहीं होता। इतना भी जीने का हौउसला नहीं बचा है। बस तुम्हरा मुँह देख जिये जा रहे हैं। हमरे रहते का–का नहीं सुनना पड़ा, जब नहीं रहूँगा तो लोग तुम्हरा तो पतंगा उड़ा देंगे।' जोर से खाँसी का दौरा पड़ा। काका की देह दोहरी हो गयी। काकी ने घबरा कर हरिप्रकाश को पुकारा। वह भाग कर आया। दोनों जने बंशी काका की छाती, हाथ–पाँव मलते रहे। काका बीच–बीच में कुछ बोलने की कोशिश करते रहे। काकी उन्हें बरजती रहीं। बंशी काका अपनी पूरी सांस सहेज कर काकी से बोले, 'हमरे पाछे तुम बहुते दुःख–दर्द सहती रही... कबहू तो हमको कछू बुरा बोल देती तो तुमसे मोह छूट जाता।'

काकी आँचल से मुँह ढँककर कुहुकने लगीं।

थोड़ी ही देर में भोर होने को था। बंगाली डॉक्टर के दवाखाना के पिछवारे उजास और काकी के आगे अँधेरा एक साथ उतर थे।

सासाराम वाली के दुआर पर बंशी काका की अंतिम यात्रा की तैयारी चल रही थी।

टिकठी तैयार हो गई थी। हरिप्रकाश तब तक कस्बे से कफ़न, फूल–माला, घी, कपूर, धूप लेकर आ गया था। कुछ लोग काका की देह को नहला रहे थे। काकी दालान से एकटक बंशी काका को देख रही थीं। अब तक तो वे ही उनको नहलाती–धुलाती थीं। किसी को कानो–कान खबर नहीं लगती थी। पर आज का हो गया महतो को, वो दूर बैठी हैं और लोग महतों को नहला रहें हैं।

एक ओर खड़ी औरतों में से एक ने फुसफुसाते हुए कहा, 'कैसी तो बाघिन औरत है, देखव आँख में एक बूँद पानी नाही है।'

दूसरी ने कहा, 'रोएगी काहें, आँख का कांटा निकल गया। अब तो इसके हँसने के दिन आवा है।'

अर्थी उठने की बारी थी। हरिप्रकाश ने आगे बढ़कर आग का कंडा उठा लिया। लोग हैरान। हरिप्रकाश के बाबू ने पूछा, 'ई का है रे हरि?'

हरिप्रकाश ने धीमें से कहा। 'बंशी काका भी हमरे बाप समान थे। अगिनकरम हमही करेंगे।'

लोगों को तो जैसे काठ मार गया था। तभी चतुरानन शुकुल ने कहा, 'सासाराम वाली से बोलिये सिन्होरा अर्थी पर रख हाथ जोड़ ले।'

काकी घर के भीतर से सिन्होरा ले आयीं और काका के सिरहाने रख दिया।

काका की अर्थी उठ गयी। अभी लोग पाँच–सात कदम ही चले होंगे कि 'रामनाम सत्य है' के उद्‌घोष के बीच अचानक काकी ने एक बेचैन आवाज में पुकारा, 'ए महतो..! अकेले कहाँ, उहाँ कौन सौत बैठी है जो देखेगी।'

लोगों ने पीछे मुड़ कर देखा। सासारामवाली भहरा कर धरती पर गिर पड़ी थीं। पल भर को किसी को कुछ समझ नहीं आया। बंशी काका की अर्थी नीचे रख दी गयी।

दो जने धीरे से उठे और बाँस काटने चले गए। एक और अर्थी जो बननी थी।

सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग
डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय,
सागर (म.प्र.)

भारत की एकता के लिए आवश्यक है कि देश की सभी भाषाएं नागरी लिपि अपनाएं। – विनोबा भावे

हिन्दी महिमा

– संतोष सोहगौरा

समावेश जब अन्य हों, भाषाओं के बोल ।
हिन्दी बने समर्थ तब, ओढ़ बहुमुखी खोल ।।

कण–कण में जो व्याप्त है, अमर शक्ति का तत्त्व ।
हिन्दी का यों देश में, होवे श्रेष्ठ महत्व ।।

'हिन्दी दिवस' में व्रत प्रबल, तब वह बने सनाथ ।
इसके सतत् विकास में, वचन, कर्म, मन साथ ।।

हिन्दी तरू जब हिन्द में, कल्पवृक्ष बन जाय ।
जन–जन की माला बने, देश जपे मन भाये ।।

उत्तर से दक्षिण दिशा, पूरब पश्चिम जाये ।
अमर ज्योति हिन्दी बने, जगमग जग हो जाये ।।

आज़ादी की भाषा बन, संस्कृति संकल्प महान ।
देश अस्मिता अक्षुण्ण रख, विश्व बंधुत्व जहान् ।।

देश प्रगति पथ पर, जब आगे बढ़ता जाए ।
हिन्दी की माला पहन, लोग यहाँ रम जाएं ।।

मन विशाल हो, सीना चौड़ा, ऐसा मेरा वेश ।
हिन्दी का यश बढ़े, समर्थ बने यह देश ।।

मनसा वाचा कर्मणा, जब लेवे यह मोल ।
हिन्दी का मान बढ़े, तब जले जगत में जोत ।।

संयुक्त कुलसचिव
डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय
सागर (म.प्र.)

तीन कविताएँ

– डॉ. आफरीन खान

माँ – ।

ज़िन्दगी की क़डी धूप में
झुलसी हुई रूह लेकर
जब घर की चौखट को
मै पार करती हूँ
एक घने दरख़्त की
ठंड़ी छांव के जैसे
माँ को इन्तेज़ार
करते देखती हूँ

चेहरा देख कर ही
वो भांप जाती है
मेरी खुशियों मेरे ग़म को
आँखों ही आँखों में नाप जाती है
बिन कहे मेरी जरूरतों का
ख्याल वो रखती है
मेरी मुश्किलों को अपने आँचल में
संभाल वो रखती है
कभी हौसला बनके
कभी उम्मीद बनके
मुझे ज़िन्दगी की मुश्किलों से
निकाल वो लेती है

मुझे परवान चढ़ाने के लिए
तूने खुद को भुला दिया
मैं आस्मां में उड़ सकूँ इसलिए
तूने अपने पंख जला दिया
माँ तेरी बेलौस मुहब्बतों का
क़र्ज कभी उतार तो न पाऊँगी
तूने जो कुछ भी दिया है
उसे शायद लौटा भी न पाऊँगी

***

माँ – II

माँ तू रब का सबसे हसीन तोहफा है
जो प्यार की मिट्टी से बना है
तेरे ही क़दमों में जन्नत है
हाँ हमने ये भी सुना है

तेरे लम्स में कोई जादू है शायद
सारे दर्द मिट से जाते हैं
छू लेती है जब तू प्यार से

तेरी गोद में सर रखते ही
सुकून से सो जाती हूँ
दुनियाँ के सारे ग़म भूल भाल के

माँ आज मैं तुझे दिल से
इतना ही कहना चाहती हूँ
एक दिन माँ मैं भी तुझे
माँ ही की तरह प्यार करना चाहती हूँ

***

काँच के ख़्वाब

चौदहवीं का चाँद और
तन्हाई का अज़ाब है
आँखों में जो चुभते हैं

काँच के ख़्वाब हैं
कोई कांधा भी नहीं
जिसपे सर को झुका दूँ
कोई दामन भी नहीं
जिसको आंसुओं से भिगा दूँ

तन–ए–तन्हां हैं ज़िन्दगी
उम्मीदों की सहर नहीं होती
दिल तड़पता है और
आँखें मेरी बेख़्वाब हैं

जिसकी सांसों की गर्मी से
पिघल जाये मेरी हस्ती
जिसके होंठों की तपिश से
रूह सरशार हो जाये

उस एक हबीब के
इंतज़ार में मुद्दतों से
दिल की धड़कनें
कितनी बेताब है

चौदहवीं का चाँद और
तन्हाई का अज़ाब है
आँखों में जो चुभते हैं
काँच के ख़्वाब हैं

सहायक प्राध्यापक
राजनीति विज्ञान एवं लोक प्रशासन विभाग
डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय
सागर (म.प्र.)

**भारत से विभिन्न
प्रदेशों के बीच
हिन्दी–प्रचार के द्वारा
एकता स्थापित
करने वाले सच्चे
भारत–बन्धु हैं।**

– अरविंद घोष

सत्यम् नाम है मेरा

– डॉ. रामहेत गौतम

सत्यम् नाम है मेरा
मुझे सत्य सिद्ध होना है।
सत्य यह है कि
मैं इंसान का बच्चा हूँ,
सिद्ध होना है कि
मुझमें इंसानियत पल रही है।
इंसानियत की पहचान है
भले–बुरे की समझ होना,
बुराई से बचना और
भलाई को अपना लेना।
समझ बढ़ाने के लिए पढ़ना होता है,
इसलिए मैं पढ़ता हूँ निरंतर
सावित्रीबाई फुले की तरह।

बुरा लगता है जब लोग
झगड़ते हैं धुत्त होकर,
और फिर संगठित नहीं रह पाते।
उनके संसाधन बर्बाद हो जाते हैं
झगड़ों, आडम्बर और कुरीतियों में।
मैं पढ़ता हूँ ताकि बच सकूँ इन सबसे,
संगठित रह सकूँ समझदारों के साथ
इसलिए पढ़ता हूँ अच्छी किताबें
ज्योतिराव फुले की तरह।

अच्छा लगता है जब
सम्मान होता है पढ़े-लिखे लोगों का,
और सुनता हूँ उनके संघर्ष की कहानियाँ।
हमारे पास संसाधन नहीं हैं
पर होंसला नहीं खोऊँगा मैं
भटकूँगा भी नहीं।
सीमित संसाधनों का सदुपयोग करता हूँ
और बर्बादी से भी बचता हूँ ताकि
संघर्ष कर सकूं हर परिस्थिति में
भीमराव अंबेडकर की तरह।
सत्यम् नाम है मेरा
मुझे सत्य सिद्ध होना है।
मुझे भारत का सपूत बनना है
और फिर कहना है-
जय भीम जय भारत।

सहायक प्राध्यापक
संस्कृत विभाग
डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय
सागर (म.प्र.)

मेरा आग्रहपूर्वक कथन है कि
अपनी सारी मानसिक शक्ति
हिन्दी भाषा के अध्ययन में लगायें।
हम यही समझें कि हमारे
प्रथम धर्मों में से
एक धर्म यह भी है।

- विनोबा भावे

हिन्दी दिवस

– श्रीमती जयंती सिंह 'मोहिनी'

कविता

हमको तो अपने वतन का,
ध्यान होना चाहिये।

अपनी हिन्दी का सदा,
सम्मान होना चाहिये।।

ये हमारी है धरोहर,
बात तुम ये मान लो।

राष्ट्र भाषा का सदा,
गुणगान होना चाहिये।।

गीत हम गाते रहेंगे,
और करते हैं नमन।

मातृभूमि पर सदा,
कुर्बान होना चहिये।।

आज हिंदी का दिवस है,
हर तरफ चर्चा यही।

रोज हिंदी का मगर,
सम्मान होना चाहिये।।

एक यही वरदान हमको,
जो विरासत में मिला।

अपनी हिंदी पर हमें,
अभिमान होना चहिये।।

***

ग़ज़ल

हो वतन में अमन ये तमन्ना रहे ।
इस धरा पर सदा गंगा धारा रहे ।।

हो गगन से ऊँचा तिंरगा मेरा ।
हर जुवाँ पर यही आज नारा रहे ।।

गंगा–जमुनी ये तहजीव सलामत रहे ।
औ दिलो में सदा भाई चारा रहे ।।

इस चमन में फिजायें महकती रहें ।
प्यार की बारिशों का फुहारा रहे ।।

ज्ञान देते रहे विश्व को हम सदा ।
साथ गीता रहे, हाथ माला रहे ।।

एच.आई.जी.–18 राजीव नगर
शिवाजी वार्ड
सागर (म.प्र.)

हिन्दी उन सभी गुणों से अलंकृत है, जिनके बल पर वह विश्व की साहित्यिक भाषाओं की अगली श्रेणी में समासीन हो सकती है।

– मैथिलीशरण गुप्त

कैमरा

– अंकित चौरसिया

कैमरा

क्या खूब चीज है ये कैमरा
हर पल हर लम्हे को सहेजता हुआ
कई बेमिसाल यादें बनाता हुआ
आज हर किसी के पास है ये कैमरा
एक अद्‌भुत कला का निर्माता है ये कैमरा
सुरक्षा और आत्मविश्वास को बढ़ाता हुआ
पर वैसे ही अंधविश्वास को फैलाता हुआ
सच को झूठा बनाता हुआ
और झूठ को सच्चा बताता हुआ
इसका अपना एक संसार है
जिसमें कैद है हर कोई यहां
एक झूठी हँसी हँसता हुआ।

***

एक बचपन ऐसा भी

एक बहुत बुरे सपने सी एक गहरी सच्चाई
जो कोई जाने भी तो कैसे
हम सब तो मस्त हैं अपनी में
कोई उस नंगी मासूमियत को देखे तो।
सोच के भी रूह कांप जाए
वो रोज़ बीतता है, उस पर
चाह बस इतनी, कि पेटभर खाना मिल जाए।
अपने बचपन को ना जाने कहां छोड़ चुके
अब ये बच्चे बचपन से कहीं दूर जा चुके
हमें तो बस अपने कल की चिन्ता
पर इनका तो आज भी नहीं
सुबह सोचते हैं की शाम भी होगी क्या अच्छी
ना जाने किस आस में जी रहे हैं
जो मन भी ना करे वही कर रहे हैं।

शोधार्थी, वाणिज्य विभाग
डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.)

क्षणिकाएँ

– डॉ. जयसिंह अलवरी

1. मदहोश

पीकर शराब
फिर रहे हैं
जो हुए मदहोश।
यकीन मानो
नहीं है यह
इतने भी बेहोश।।

***

2. हठके

पास जिनके
जीने तक का
सलीका नहीं था
फिरते थे भटके।
बरसा ऐसा अनायास
आंगन में उनके धन
लग रहे हैं अब
सबसे हठके।।

***

3. दिखावा

दिखावा
और बनावटीपन
जिन्हें भाता है।
शायद उन्हें
जीने का सलीका
नहीं आता है।

4. एक दिन

छोड़ सब
कल जाना होगा वहाँ
जहाँ से फिर
लौट के न आना होगा।
कै दिन बुलावे के
बेकार होगा
हर बहाना।।

***

5. भूल मकसद को

ये जो भी
हरदम
अंह की खेती को
सिंच रहे हैं।
भूल जीवन के मकसद को
अपनी कुबुद्धि पर
रिंझ रहे हैं।।

सम्पादक–साहित्य सरोवर
न्यू दिल्ली हाउस, नियर बस स्टैंड
सिरूगुप्पा
जिला – बल्लारी (कर्नाटक)

हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाना नहीं है, वह तो है ही।

– कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी

राजभाषा प्रकोष्ठ की गतिविधियाँ

– विनोद रजक

1. **कार्यशाला का आयोजन एवं प्रशिक्षण सामग्री तैयार करना :**

विभिन्न विभागों/अनुभागों में हिन्दी के प्रगामी प्रयोग को बढ़ावा देने के उद्देश्य से राजभाषा प्रकोष्ठ समय–समय पर हिन्दी कार्यशालाओं का आयोजन करता है। इस वित्तीय वर्ष में 'तकनीकी विषयों में हिन्दी : सृजन एवं अनुसृजन' विषय पर दिनांक 26 जून, 2023 को शिक्षकों हेतु एक दिवसीय हिन्दी कार्यशाला का आयोजन किया गया। कार्यशाला में प्रो. एम. एल. खान, प्रो. उमेश कुमार पाटिल, डॉ. संजीव सर्राफ, डॉ. अभिज्ञान द्विवेदी, डॉ. महेश्वर पण्डा, डॉ. नीरज उपाध्याय, डॉ. संजय कुमार, डॉ. के. बी. जोशी आदि उपस्थित रहे। विषय प्रवर्तन संयुक्त कुलसचिव एवं प्रभारी हिन्दी अधिकारी श्री संतोष सोहगौरा का रहा। इसी क्रम में विश्वविद्यालय के कर्मचारियों हेतु हिन्दी टंकण पर आधारित एक दिवसीय हिन्दी कार्यशाला का आयोजन दिनांक 25-09-2023 को कम्प्यूटर प्रयोगशाला, जवाहरलाल नेहरू पुस्तकालय में किया गया। उक्त कार्यशाला में श्री अब्दुल नबाव, श्री कैलाश प्रसाद आठ्या, श्री मनोज कुमार कावड़े, श्री दीपक मिश्रा, श्री शेखर हेडाऊ आदि कर्मचारीगण उपस्थित रहे।

2. **हिन्दी के प्रगामी प्रयोग की तिमाही रिपोर्ट :**

राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय, भारत सरकार के निर्देशों के तारतम्य में विश्वविद्यालय में हिन्दी के प्रगामी प्रयोग से संबंधित तिमाही प्रगति रिपोर्ट 'प्रत्येक वित्तीय वर्ष में 04' गृह मंत्रालय को ऑनलाइन प्रेषित की गईं।

3. **विश्वविद्यालयीन राजभाषा कार्यान्वयन समिति :**

राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा समय–समय पर जारी आदेशों/निर्देशों का अनुपालन सुनिश्चित कराने के उद्देश्य से गठित विश्वविद्यालयीन राजभाषा कार्यान्वयन समिति की तिमाही बैठकों का आयोजन किया जाता है। इस वित्तीय वर्ष में विश्वविद्यालयी राजभाषा कार्यान्वयन समिति की 43वीं तिमाही बैठक का आयोजन दिनांक 10 अगस्त, 2023 को माननीया कुलपति महोदया प्रो. नीलिमा गुप्ता की अध्यक्षता में विश्वविद्यालय के प्रशासनिक भवन में स्थित समिति कक्ष में

किया गया। इस बैठक में कार्यालयीन कामकाज में हिन्दी के प्रयोग को बढ़ावा देने के उद्देश्य से लिए गए निर्णयों पर भी समुचित अनुवर्ती कार्रवाई की गई। बैठक का संचालन समिति के सचिव श्री संतोष सोहगौरा ने किया।

4. हिन्दी पखवाड़ा 2023 :

हिन्दी दिवस का आयोजन राजभाषा प्रकोष्ठ की महत्त्वपूर्ण गतिविधियों में से एक है। इस वर्ष राजभाषा के वार्षिक अनुष्ठान 'हिन्दी दिवस' को 'हिन्दी पखवाड़ा' (14 सितम्बर से 29 सितम्बर, 2023) के रूप में विशेष हर्षोल्लास के साथ मनाया गया। दिनांक 14-09-2023 को हिन्दी पखवाड़ा के उद्घाटन समारोह में प्रो. आनंदप्रकाश त्रिपाठी ने 'राजभाषा संवर्धन में उच्चतर शिक्षा संस्थानों की भूमिका' विषय पर व्याख्यान दिया। इस अवसर पर विश्वविद्यालय के प्रभारी, हिन्दी अधिकारी श्री संतोष सोहगौरा ने पुणे (महाराष्ट्र) में आयोजित तृतीय अखिल भारतीय राजभाषा सम्मेलन में सहभागिता सुनिश्चित की। पखवाड़ा के अंतर्गत शिक्षकों, अधिकारियों एवं कर्मचारियों हेतु विभिन्न प्रतियोगिताएँ एवं व्याख्यान आयोजित किये गये।

(i) प्रतियोगिताओं का आयोजनः हिन्दी पखवाड़ा के अंतर्गत विश्वविद्यालय के 'हिन्दी क्लब' के सौजन्य से हिन्दी गीतमाला एवं नाट्यकला प्रदर्शन, विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों हेतु हिन्दी चित्रकला प्रतियोगिता 'राजभाषा का विकास एवं विस्तार' विषय पर आयोजित की गयी। केन्द्रीय विद्यालय क्रं. 04 के विद्यार्थियों हेतु 'हिन्दी निबंध लेखन प्रतियोगिता', शासकीय माध्यमिक शाला पथरिया जाट के विद्यार्थियों हेतु 'हिन्दी निबंध लेखन प्रतियोगिता', विश्वविद्यालय के कर्मचारियों हेतु 'हिन्दी टंकण प्रतियोगिता', विश्वविद्यालय के अधिकारियों हेतु 'आशुभाषण प्रतियोगिता' एवं विश्वविद्यालय के शिक्षकों, अधिकारियों एवं कर्मचारियों हेतु काव्यांजलि का आयोजन किया गया। इन प्रतियोगिताओं के विजेताओं को क्रमशः रु. 1000/-, रु. 700/- एवं रु. 500/- के प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय नकद पुरस्कार एवं शिक्षकों को सहभागिता प्रमाण–पत्र प्रदान किए गए।

(ii) समापन एवं पुरस्कार वितरण समारोहः दिनांक 29-09-23 को आयोजित हिन्दी पखवाड़ा के समापन समारोह को विश्वविद्यालय की माननीया कुलपति महोदया प्रो. नीलिमा गुप्ता, विश्वविद्यालय कार्यपरिषद के माननीय सदस्य प्रो. अतुल एम. गोसांई एवं हिन्दी विभाग के अध्यक्ष प्रो. आनंदप्रकाश त्रिपाठी ने भी सम्बोधित किया। हिन्दी अधिकारी श्री संतोष सोहगौरा के संयोजकत्व में आयोजित कार्यक्रम

में अधिकारियों, शिक्षकों, कर्मचारियों एवं छात्र–छात्राओं के लिए आयोजित विभिन्न प्रतियोगिताओं के विजेता प्रतिभागियों को पुरस्कार एवं प्रमाण–पत्र प्रदान किए गए।

5. नैक पियर टीम द्वारा राजभाषा प्रकोष्ठ का निरीक्षण:

चतुर्थ चक्र हेतु राष्ट्रीय मूल्यांकन और प्रत्यायन परिषद (NAAC) नैक की पांच सदस्यीय पीयर टीम द्वारा दिनांक 12, 13 एवं 14 मई, 2023 को विश्वविद्यालय का दौरा किया गया। नैक पीयर टीम में प्रो. मनोज कुमार धर (अध्यक्ष) प्रो. भगवान सिंह चौधरी (सदस्य–सचिव), प्रो. मंजीत सिंह (सदस्य), प्रो. सुबीर कुमार रॉय (सदस्य) एवं प्रो. अंकुर सक्सेना (सदस्य) सम्मिलित थे। टीम ने निरीक्षण के क्रम में दिनांक 13 मई को प्रशासनिक भवन का दौरे के दौरान विश्वविद्यालय में राजभाषा के प्रगामी प्रयोग की प्रगति के उद्देश्य से राजभाषा प्रकोष्ठ का भी निरीक्षण किया गया। उक्त निरीक्षण के दौरान टीम ने विश्वविद्यालय की 'राजभाषा पदक एवं पुरस्कार योजना' की विस्तार से जानकारी ली साथ ही प्रोत्साहन की दिशा में की जा रही इस पहल की सराहना भी की। संसद के पटल पर रखी जाने वाले दस्तावेजों विशेषतौर पर वार्षिक प्रतिवेदन एवं वार्षिक लेखा के द्विभाषी होने पर टीम ने संतोष व्यक्त किया। राजभाषा प्रकोष्ठ द्वारा प्रकाशित होने वाली वार्षिक गृह राजभाषा पत्रिका की सराहना करते हुए टीम ने विश्वविद्यालय की रचनात्मकता पर सकारात्मक प्रतिक्रिया व्यक्त की। टीम के विभिन्न प्रश्नों के उत्तर हिन्दी अधिकारी श्री संतोष सोहगौरा ने दिए। टीम ने एकमत से राजभाषा प्रकोष्ठ के कामकाज पर संतोष व्यक्त किया।

विश्वविद्यालय परिवार के अथक परिश्रम से विश्वविद्यालय को 03.38 स्कोर के साथ 'ए प्लस' प्रदान किया गया।

6. अनुवाद कार्य:

विश्वविद्यालय की वार्षिक लेखा रिर्पोट (2022-23) तथा विश्वविद्यालय के विभिन्न अध्यादेशों का अनुवाद किया गया। विश्वविद्यालय द्वारा जारी की जाने वाली विभिन्न प्रेस विज्ञप्तियों, निविदा सूचनाओं आदि का यथावश्यक अनुवाद किया गया। कार्यालय के विभिन्न अनुभागों द्वारा वांछित विभिन्न प्रपत्रों एवं कार्यालयीन साहित्य का अनुवाद किया गया। कार्यालय में प्रचलित विभिन्न प्रपत्रों एवं अन्य आवश्यक दस्तावेजों का द्विभाषीकरण किया गया। राजभाषा प्रकोष्ठ राजभाषा अधिनियम 1963 की धारा 3(3) के अनुपालन के लिए भी सतत् प्रयासरत है।

7. भारतीय भाषा उत्सव का आयोजनः

देश के विभिन्न क्षेत्रों में विविध संस्कृतियों के लोगों के बीच संबंधों को प्रगाढ़ करने एवं बहुभाषिकता को बढ़ावा देने के उद्देश्य से भाषा अनुभाग, उच्चतर शिक्षा विभाग, शिक्षा मंत्रालय के निर्देशानुसार विश्वविद्यालय में भारतीय भाषा उत्सव का आयोजन दिनांक 12-12-2023 को गौर समिति कक्ष में आयोजन किया गया। 'भारतीय भाषा उत्सव' में विश्वविद्यालय के बहुभाषी शिक्षकों, अधिकारियों एवं कर्मचारियों ने अपनी मातृभाषा में अपने विचार रखे।

8. 'भारतीय भाषा प्रकोष्ठ' का गठनः

भारतीय भाषाओं को बढ़ावा देने हेतु विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली द्वारा गठित उच्चस्तरीय राष्ट्रीय संचालन समिति द्वारा दी गई अनुशंसा के परिपालन में राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 के सुचारू क्रियान्वयन हेतु संविधान की आठवीं अनुसूची में वर्णित 22 भारतीय भाषाओं को बढ़ावा देने पर विशेष बल दिया गया है।

इस तारतम्य में माननीया कुलपति महोदया की अध्यक्षता में दिनांक 13 दिसम्बर, 2024 को आयोजित भारतीय भाषाओं के विकास हेतु गठित समिति की समीक्षा बैठक में पारित संकल्प के परिपालन में विश्वविद्यालय में अध्ययनरत विभिन्न भाषा–भाषी विद्यार्थियों की भाषा–संस्कृति के संरक्षण एवं संवर्धन, संबंधित भाषा में पाठ्यसामग्री निर्माण, राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 के अनुपालन में मातृभाषाओं में पुस्तक लेखन/ अनुवाद, भारतीय भाषाओं के प्रशिक्षण की व्यवस्था सुनिश्चित करने तथा संबंधित भाषा के लिए 'भाषा अभिभावक' की भूमिका के निर्वहन हेतु 'भारतीय भाषा प्रकोष्ठ' का गठन किया गया।

9. अन्य महत्त्वपूर्ण कार्य :

राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय, भारत सरकार के निर्देशों के अनुपालन में सागर नगर की 'नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति' की बैठकों में विश्वविद्यालय के राजभाषा प्रकोष्ठ ने सदस्य के रूप में प्रतिभागिता की। समिति के सदस्य–सचिव के अनुरोध पर विश्वविद्यालय के हिन्दी अधिकारी श्री संतोष सोहगौरा ने राजभाषा कार्यान्वयन संबंधी विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला।

उच्च श्रेणी लिपिक, राजभाषा प्रकोष्ठ
डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय,
सागर (म.प्र.)

सरलता और शीघ्र सीखी जाने योग्य भाषाओं में हिन्दी सर्वोपरि है।
– लोकमान्य बालगंगाधर तिलक

माननीया कुलपति प्रो. नीलिमा गुप्ता जी अध्यक्षता में भारतीय भाषा समिति की समीक्षा बैठक का आयोजन।

विश्वविद्यालय के नवनियुक्त तकनीकी कर्मचारियों हेतु 'कार्यालयीन कामकाज में तकनीकी भाषा का उपयोग' विषय पर हिन्दी कार्यशाला का आयोजन।

हिन्दी पखवाड़ा–2023 के दौरान शास्त्रीय गायन प्रस्तुत करती हुई विश्वविद्यालय की छात्रा।

विश्वविद्यालय में हिन्दी के प्रगामी प्रयोग को बढ़ावा देने हेतु जवाहर लाल नेहरू पुस्तकालय का राजभाषा प्रकोष्ठ द्वारा राजभाषा निरीक्षण।

वर्षा ऋतु में विश्वविद्यालय प्रांगण
स्थित गौर मूर्ति का विहंगम दृश्य

'हिंदी चिरकाल से ऐसी भाषा रही है, जिसने मात्र विदेशी होने के कारण किसी शब्द का बहिष्कार नहीं किया'।

– डॉ. राजेन्द्र प्रसाद

ISSN 2321-5704

9 772321 570005